श्री सत्यनारायण व्रत कथा

संशय निवारण भाग -१

पण्डित परन्तप प्रेमशंकर (सिद्धपुर)

श्री रणछोडरायजी, बिन्दुसरोवर, सिद्धपुर

श्री सत्यनारायण कथा

संशय निवारण भाग १

- पण्डित परन्तप प्रेमशंकर (सिद्धपुर) –

– सौजन्य –

- एक श्लोकी भागवत –

आदौ देवकी देव गर्भजननं, गोपी गृहे वद्र्धनम्।
माया पूज निकासु ताप हरणं गौवद्र्धनोधरणम्॥
कंसच्छेदनं कौरवादिहननं, कुंतीसुपाजालनम्।
एतद् श्रीमद्भागवतम् पुराण कथितं श्रीकृष्ण लीलामृतम्॥

अच्युतं केशवं रामनारायणं कृष्ण:दामोदरं वासुदेवं हरे।
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे॥

धर्म शास्त्रों के अनुसार, भागवत का पाठ करने से पुण्य मिलता है और पाप का नाश होता है, लेकिन वर्तमान समय में संपूर्ण भागवत पढ़ने का समय शायद ही किसी के पास हो। ऐसे में नीचे लिखे एक मंत्र का रोज विधि-विधान से जप करने से संपूर्ण भागवत पढ़ने का फल मिलता है। इस मंत्र को एक श्लोकी भागवत भी कहते हैं।

॥ श्री हरि ॥

पुण्य स्मृति

स्व० श्रीमति गीतादेवी नौरतमल गुप्ता

॥ ॐ ॥

शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् । प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥
ब्रह्मस्वरूपा परमा ज्योतीरूपा सनातनी।सर्वविद्याधिदेवी या तस्यैवाण्यै नमोनमः॥
अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया ।चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥
सर्व-देव-शिरो-रत्न-निघृष्ट-चरणाम्बुजा । स्मरतां-सर्व-पापघ्नी सर्व-कारण-कारणा ॥
व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपायविष्णवे । नमो वै ब्रह्मनिधयेवासिष्ठाय नमोनमः॥
गुरूवर्य - प.पू. वैद्यशास्त्री श्री प्रेमशंकर शर्मा, प.पू. श्री राधाकृष्ण शुक्ल, प.पू. श्री हंसानन्दजी महाराजश्री के श्री चरणोंमें सादर वंदन करतां हुं ।

इस व्रतकथा में अनेक संशय स्थान है, जैसे कि, भगवान स्वयं क्यों कहते है - **तस्य त्वं पूजनं विप्र कुरुष्व व्रतमुत्तमम्, ममपूजा बहिर्मुखः** मेरी पूजा करो, दुःख का कारण मेरी पूजासे बहिर्मुख होना है, दूसरा **वृद्धब्राह्मणरूपस्तं पप्रच्छ द्विजमादरात्, किं ते मनसि वर्तते** भगवान को वृद्धब्राह्मण के रूपमें आनेकी क्या आवश्यकता है, क्या भगवान नहीं जानते कि, ब्राह्मणको क्या दुःख है, , क्या वे अन्तर्यामी नहीं है । नारदजी क्यों वैकुण्ठलोक गए है, भगवान आप्तकाम है, तो स्वयंकी पूजाके लिए क्यो कहते है, वह हमारी पूजासे ही महान बनते है । आगे, शतपुत्रों का नाश होना, व्रतके प्रभाव से किसीको कन्या, तो किसी को पुत्र प्राप्त होना, नांवका अद्रश्य होना, व्रतका फल सबको भिन्न-भिन्न क्यों, निर्गुण ब्रह्मका सगुण होना-अवतीर्ण होना, इत्यादि संशय उत्पन्न होते है । जब तक **निःसंशयात्मकता न** हो उपासनाका कोई फल नहीं मिलता, ऐसे अनेक संशयोंके निवारणका यथामति प्रयास यहां किया है ।

इससे पूर्वके, सभी लेख एवं पुस्तको में कई महापुरूषोका आशिर्वाद मिला है, यहीं मेरा सद्भाग्य है । प.पू.जगद्गुरू श्री स्वरूपानन्दजी महाराजश्री, प.पू. जगद्गुरू श्री जयेन्द्र सरस्वतीजी महाराज, प.पू.कृष्णशंकर शास्त्रीजी, सोला-भागवत्विद्यापीठ, प.पू. जगद्गुरूश्री श्रीविद्याभिनव श्रीकृष्णानन्दतीर्थजी, पद्मश्री महामंडलेश्वर पू.श्री डाह्याभाई शास्त्री सहित अनेक विद्वानोंने मुझे प्रोत्साहित किया है । मेरे प्रेरणास्त्रोत इन सभी महानुभावोंको कोटीशः वंदन करता हुं ।

विद्वज्जन चरणरेणु... **पंडित परन्तप प्रेमशंकर (सिद्धपुर)**

अनुक्रमणिका.......

भाग-१, इस भागमें सत्यनारायणव्रत में सत्य, नारायण, व्रत की विस्तृत चर्चा की है, जिसके व्रत क्या है वह स्पष्ट हो जाए। तदुपरान्त वेदव्यास, शौनक, सूतजी, ऋषिगण, नारदजी का परिचय करवाके, वन या एकान्तोपासनाका महत्त्व बताया है। पृथ्वीलोक को मृत्युलोक क्यों कहां, नारदजी नारायणके पास ही क्यों गए, नारायण के आयुध, भगवान अंन्तर्यामी है तो नारदजीको आनेका कारण क्यों पूछते है, नारदजीकी स्तुतिसे सगुण-निर्गुण या साकार-निराकार का वर्णन, व्रत क्या है, इसका फल, पूजा के प्रकार, विधि-विधानादि, श्रद्धा, श्रवणकी पद्धति, अर्वाचीन वक्ताओंकी वास्तविकता, संतकी परिभाषा इत्यादिका प्रारम्भिक वर्णन किया है, जो इस कथाका हार्द है।

भाग-२ (जो अभी प्रकाशिनाधीन है), (१) भगवान के मूर्तरूप की आवश्यकता (२) निर्गुण सगुण कैसे बनता है, उसको तो कोई फलस्पृहा नहीं है, निर्गुण-निराकार-निर्विकार है, उद्देश्य क्या है (३) ब्राह्मणका हि रूप क्यों लेते है (४) ब्राह्मण क्यों प्रिय है (५) प्रायः ब्राह्मण निर्धन क्यों होता है इत्यादिका विचार क्रमशः करते है (६) काशी नगरीमे कई दरिद्री ब्राह्मण होंगे, एकके ही उपर अनुग्रह क्यो उपरान्त परमत्मा सर्वशक्तिमान होते हुए स्वयं क्यों आते है, परमात्मा व्यक्त होते है तो किसीका आश्रय करते है, तब क्या उनकी सर्वशक्तिमत्ता, सर्वव्यापनी स्थिति रहती है, वे कैसे व्यक्त होते है, व्यक्त होनेके पदार्थ कहां से लाते है, कहां बैठकर व्यक्त होते है, भगवान मत्सादि का रूप क्यों लेते है, उसे ब्राह्मणप्रिय क्यों कहा, ब्राह्मण कौन है और प्रायः निर्धन क्यों होते है, स्वयं की पूजाव्रतादि करनेका क्यों कहते है, क्या वे आप्तकाम नहीं है, व्रतमें फलभेद क्यों है, किसीको पुत्र, किसीको वैभव, किसीको पुत्री, पुत्र महिमा एवं आवश्यकता, नांव का अदृश्य होना, प्रसाद महिमा, वनमें भक्ति क्यो, शतपुत्रोंका नाश होना, व्रत कर्ताओं को मुक्तिके लिए दुसरा जन्म क्यो, ऐसे अनेक संशयों का निवारण इस भागमें है।

हमारा सनम्र आग्रह है कि, आप दोनों भागोंको पढकर, आपका प्रतिभाव अवश्य दे, जिससे, भविष्यमें संशोधित आवृत्तिमें इसे समाविष्ट किया जाए। यदि यहीं पुस्तक भाग-१,भाग-२ (मिलाकर एक पुस्तकमें - किसीकी स्मृतिमें) प्रकाशित करना हो तो, कृपया संपर्क करें, इसमे आपको कम-से-कम २०० प्रत छपवानी होगी।

इसमें (यदि आप किसीकी स्मृति में छपनाना चाहते है तो, उसका खर्च) मात्र प्रीन्टींग, पेपर, बाईन्डिंग का हि खर्च लगेगा। टाईपींग, प्रुफ रिडींग, प्लेट्स आदिका खर्च नहीं लिया जाएगा।

॥ श्रीरस्तु ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय – चतुःश्लोकी भागवत्

॥ श्री भगवानुवाच ॥

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम् । पश्चादहं यतेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥१॥

ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि । तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथातमः॥२॥

यथा महान्तिभूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु । प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥३॥

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः । अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा ॥४॥

सृष्टी से पूर्व केवल- मैं ही था। सत्, असत या उससे परे मुझसे भिन्न कुछ नहीं था। सृष्टी न रहने पर (प्रलयकाल में) भी मैं ही रहता हूँ। यह सब सृष्टीरूप भी मैं ही हूँ और जो कुछ इस सृष्टी, स्थिति तथा प्रलय से बचा रहता है, वह भी मैं ही हूँ। (१)

जो मुझ मूल तत्त्व को छोड़कर प्रतीत होता है और आत्मा में प्रतीत नहीं होता, उसे आत्मा की माया समझो। जैसे प्रतिबिम्ब अथवा अंधकार (छाया) होता है। (२)

जैसे पंचमहाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वाय- और आकाश) संसारके छोटे-बड़े सभी पदार्थोंमें प्रविष्ट होते हुए भी उनमें प्रविष्टनहीं हैं, वैसे ही मैं भी विश्व में व्यापक होने पर भी उससे संपृक्त हूँ। (३)

आत्- मतत्त्व को जानने की इच्छा रखनेवालेके लिए इतना ही जानने योग्य है की अन्वय (सृष्टी) अथवा व्यतिरेक (प्रलय) क्रम में, जो तत्त्व सर्वत्र एवं सर्वदा रहता है, वही आत्मतत्त्व है। (४)

इस चतु:श्लोकी भागवत के पठन एवं श्रवण से मनुष्य के अज्ञान जनित मोह और मदरूप अंधकार का नाश हो वास्तविकज्ञानरुपी सूर्य का उदय होता है।

॥ श्रीमन्महागणपतये नमः॥ श्री शकटाम्बिकायै नमः॥ श्री गुरवे नमः॥

प्राक्कथन

गुरूकृपा हि केवलम् – यह मात्र सुवाक्य नहीं है, एक दिव्यानुभूति है, जो अन्तःकरणको सद्विचारोसे निरन्तर प्लावित करती है । कोई भी कर्मका सामर्थ्य, प्रायः गुरूकी कृपाके बीना पूर्ण नहीं हो सकता । यथा उनके श्रीचरणों में इस संशोधित पुनरावृत्ति (श्री सत्यनारायण कथा - संशय निवृत्ति -भाग-१) के प्रकाशन पर साष्टांग प्रणाम करता हुं ।

श्री सत्यनारायणकी कथा स्कंदपुराणमें रेवाखण्डमें कही गई है । यह कथा भविष्यपुराणमें भी ३.२.२८-२९ में दी गई । काश्मीर से कन्याकुमारी ऐवं कंडला से कलकत्ता पर्यन्त पूरे भारतवर्ष में यह एक छोटा सा व्रत है, जो प्रायः अच्छे या मांगलिक प्रसंगो पर किया जाता है । हमारे यहां कोई भी सिद्ध व्रत, मंत्र या स्तोत्र का वर्णन तीन भागमें किया जाता है । प्रथम भाग में व्रत, स्तोत्र या मंत्र का प्रादुर्भाव कहां, कैसे, कब और क्यों हुआ - वर्णन किया जाता है, यथा, इसको पूर्वपीठिका कहते है, यहां व्रत का महत्त्व भी होता है । दूसरे भागमें, मंत्र या स्तोत्र की विधि, न्यास, छन्द, ऋषि, विनियोग एवं मूलमंत्र या स्तोत्र लिखते है । अंतिम भागमें इस मंत्र, व्रत एवं स्तोत्र का फल, उपासना का उचित स्थान एवं काल का निरूपण होता है । इसका उत्तम उदाहरण श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्र है । महाभारत के युद्ध के उपरान्त श्री यधिष्ठिर एवं श्री भीष्मपातामह के संवाद है, जिसमें युधिष्ठिर पूछते है कि - **किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम्। स्तुवन्तःकं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम्॥ कोधर्मः सर्वधर्माणां भवतःपरमोमतः। किं जपन्मुच्यतेजन्तुर्जन्मसंसार बन्धनात्॥** युधिष्ठर पूछते है कि, कौनसा स्तोत्र है, कौन देव है, कौनसा धर्म है, जिसके द्वारा व्यक्ति जन्मसंसार के समस्त बन्धन से मुक्त हो जाता हो, और इसी प्रश्न के प्रत्युत्तर में, श्रीभीष्म विष्णु सहस्र स्तात्र बताते है । स्तोत्र - सर्वप्रहरणायुध ॐ नम इति, अंतिम नाम से पूर्ण होता है । इसके बाद इस स्तोत्र का क्या फल है वह - **इतीदं कीर्तनीयस्य केशवस्य महात्मनः, नाशुभं प्राप्नुयात्किंचित्सोऽमुत्रेह च मानवः** द्वारा स्तोत्रका फल बताते है।

ठीक, इस परंपरासे प्रथमाध्याय में व्रतका प्रादुर्भाव कब हुआ, और किन किन लोगोंने यह व्रत किया, उनके चरित्र पूर्वपीठिकाके रूपमें है । तत्पश्चात् व्रतका विधि, विधान, शुभकाल, पूजनार्चन-नैवेद्यादि सहित व्रतकी बात है और अंतमें, इस व्रतके प्रभावसे व्रतकर्ताओंको, क्या लाभ हुआ, क्या फल मिला, इत्यादि की चर्चा होती है ।

सामान्यतया, जब हम कोई नयी चीज या मशीन-यंत्र के बारेमें सूनते है तो, पहले वह, किस कंपनीकी प्रोडक्ट है, इसका प्रयोजन क्या है, क्यों बनाई गई है, किस काममें आती है इत्यादिका विचार करते है - फिर मशीन कैसे चलाते है, इसका मूल्य इत्यादिकी जानकारी लेते है और इस मशीन से क्या लाभ होता है, जो लोग लाभान्वित हुए है उनकी चर्चा करते है ।

कोई भी कार्य, पूर्ण समझदारी के साथ हो, वो ही बलवत्तर होता है । पोस्टमेन की भांति, पूरे गांवमें चलने को, व्यायाम नही माना जाता, इसे जोगिंग (Jogging) नहीं मानते, और इससे, इतना स्वास्थ्यलाभ नहीं होता, जितना अर्थपूर्णरीत से, शूज एवं परिधान (Jogging Shoes, Dress) एवं पद्धति जानकर किए हुए व्यायाम से होता हो। बिना समझे किए कार्यका फल प्रायः ना के बराबर होता है ।

हमारे शास्त्र, मात्र विधि-विधान ही नही, पूरे वैज्ञानिक अभिगम के आधार पर है । **नार्थविज्ञानविहीनं शब्दस्योच्चारणंफलति । भस्मनि वन्हिविहीने न प्रक्षिप्तं हवि र्ज्वलति ॥** मन्त्रोको अर्थानुसंधानसे ही जपना चाहिए । बिना अर्थ जाने जप करनेसे फल नहीं मिलता । जिस प्रकार भस्म में अग्नि न होने से उष्मा नहीं होती, उसमें दिया हुआ हव्य कहीं भी पहोंचता नहीं । अर्थ स्वयं शिव का स्वरूप है, चैतन्यका रूप है, यथा बिना चैतन्यानुसंधान के कार्यका कोई महत्व नहीं रहता ।

प्रायः देखा गया है, कि शास्त्र एवं पुराणों में कही गई बातो पर कुछ अनुकरणशील मनीषायुक्त मानसिकतावाले, कथान्तर्गत गूढार्थ समझनेमें असमर्थ होते है, तब वे किसी विद्वान या गुरूपसदन होनेके बजाय, उसकी उपेक्षा एवं उपहास करते है । कथामें - कथाकी बात कहीं है ही नहीं, व्रतकी बात की है । **व्रतमस्ति महत्पुण्यं - कुरुष्व व्रतमुत्तमम् - विधानं च**

व्रतस्यास्य विप्रायाऽऽभाष्य यत्नत: - पांचों अध्यायों में व्रतका उपदेश है, विधान है ।

माना गया है कि वेद-वेदान्तको समझना अति दुष्कर है, एक मुहावरा प्रसिद्ध है कि, **इसमें कहां वेद पठना है** । शास्त्रोपनिषद पुराणादिकी, कुछ बाते समझना सरल नहीं होता, गुरूकी शरण लेनी पडती है ।

दो वकील जब परस्पर दलिल करते है तो, ज्यादातर कानून की धाराओ का संदर्भ बताते है, या जब दो डॉक्टर परस्पर परामर्श करते है, तो अपनी मेडिकल भाषा का प्रयोग करते है । प्रायः, ये डॉक्टर या वकील का संवाद डॉक्टर या वकील ही समझ पाते है, अन्यको किसीको, पता नही पडता । गणित की चर्चा हो या पदार्थविज्ञान की, यह उसी विचारधाराश्रित लोग ही समझ सकेंगे । वेद-वेदान्त को समझने से पूर्व, इसमें प्रयुक्त पर्याय-परिभाषाओं को - टर्मिनोलोजी को, समझना पडता है । कोई बहुश्रुत-विचारक हो, या कोई पीएचडी हो, तो इसका अर्थ कदापि यह नहीं हो सकता, कि वह किसी भी विषयकी गहनताको सहज ही समझ पाएगा । जो लोग निम्नविचारवाले होते है, या ज्ञानपिपासु नहीं होते, वे लोग, ऐसे पुराणान्तर्गत गूढ रहस्योंका उपहास करते है ।

अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्यदर्शकम् । सर्वस्यलोचनंशास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एवसः। शास्त्र जो है लोचन के समान है, जप- व्रतादि का विधि-विधान संपूर्ण विवरण इनमें समाविष्ट है । **अवतीर्णो जगन्नाथःशास्त्ररूपेण वै**प्रभुः (शाण्डिल्य स्मृ ४.११३), **श्रुतिस्मृति ममेवाज्ञ** - शास्त्र भगवान की आज्ञा है - भगवान का शब्दावतार है । इसलिए भगवानने कहा है कि, कर्म शास्त्राधार से करना चाहिए, अन्यथा कोई फल या लाभ नही मिलता - **यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्** ।। गी.१६.२३।। इसी प्राक्कथन से साथ हम इस पुनित व्रतमें प्रायः सभी संशयोका निरसन करनेका, सनम्र प्रयास किया है । इस पुस्तक का यह संशोधित पुनरावृत्ति प्रस्तुत करते हुए अत्यानन्दानुभूति करता हुं । कथा की गहनताको समझने हेतु प्रारम्भ में ज्यादा प्रमाणोयुक्त चर्चा की गई है, इन कथाके चरित्रोंकी तह तक पहूंचनेका नम्र प्रयास है ।

इस व्रत कथामें, कई संशय स्थान है, यद्यपि इस कथाका प्रादुर्भाव जिन महापुरूषों के द्वारा हुआ है, इसे देखते विश्वास होता है कि यह कोई सामान्य कथा नहीं है ।

नैषा तर्केणमतिरापनेया - कठोपनिषद्, परमात्मा तो तर्कगम्य या बुद्धिगम्य नहीं है, तर्क व बुद्धिका संचालक है । तथापि, **तर्को वै ऋषि** कहा है, यह तर्क सत्यके समीप जानेका एक साधन है । हम तर्क द्वारा इस कथान्तर्गत सत्यको जाननेका सनम्र प्रयास करेंगे ।

गंगोत्री-गोमुख से गंगाजीका प्रागट्य होकर, पंचप्रयागों में अवतरण होते हुए, इस देवनदी का हिमालय से गंगासागर तक विस्तार हुआ, वैसे ही इस कथाका श्रीनारद-नारायण संवादसे प्रारम्भ होकर, स्वयं नारायण द्वारा शतानन्द ब्राह्मणके जीवनमें अवतरित होते हुए, काष्टक्रेता, साधुवणिक, तुंगध्वज, उल्कामुख से लेकर, आज काश्मीर से कन्याकुमारी एवं कंडला से कटक पर्यन्त समग्र भारत में प्रवाहित हो रही है । इस यथेच्छ फलदाता, लघूपायात्मक व्रतान्तर्गत उठनेवाले संशयोंका निवारण करनेका, यह यथामति प्रयास है । मेरे इस प्रयत्नके मूर्तस्वरूप को विद्वद्वर्ग के करकमलों में समर्पित करते हुए, अत्यानन्दानुभूति करता हुं ।

इसी ग्रंथका द्वितीयभागका भी, लेखनकार्य पूर्ण हो चूका है । इस ग्रंथ प्रकाशनकी पूरी अर्थव्यवस्था **मे. किरण ग्रुप ऑफ कंपनीज** के सौजन्य से प्राप्त हुआ है, यथा उनका ऋण स्विकार करते हुए, उनके सर्वतोमुखी कल्याणकी, परमात्मा से प्रार्थना करते है ।

यहां सत्यनारायण व्रत कथामें प्रथमाध्याय के पूर्व ही, सत्यनारायण व्रत की विस्तृत चर्चा करेंगे, क्योंकि प्रत्येक अध्यायमें व्रत ही केन्द्रवर्ती विचार है एवं इस में आनेवाली सभी कथाओंका सार है ।

सत्यत्वेन स्तुवन्ति सत्यव्रतमिति । व्रतानां सत्यमुत्तमम्, ग.पु. ॥

विद्वज्जन चरणरेणु पंडित परन्तप प्रेमशंकर (सिद्धपुर)

Email : **ppp.sidhpur@gmail.com** , 9898367174

श्री सत्यनारायण व्रत

कथा के प्रारम्भ में कहा है प्राप्स्यते वाञ्छितं फलम्, यह तो समझमें आता है कि, सब मनोकामना पूर्ण करनेवाला यह व्रत है। जिस प्रकार तारमें प्रवाहित विद्युत से प्रकाश भी मिलता है, टी.वी. भी चलता है, हिटर भी चलता है, ए.सी भी चलता है, पानी भी चढता है, ज्यूस भी बनता है। किन्तु नारदजी को भगवानने कहा सत्यनारायस्यैव व्रतं सम्यग्विधानतः यह व्रत क्या है? नारदजी तो उत्तमाधिकारी है, वे तो सरलतासे व्रतको समझ गए होंगे। एक ५००० कि.वॉ. की मोटर को सीधे ही थर्मल स्टेशन पर लगानेसे चल पडती है, किन्तु २ वॉल्टकी मोटर जल जाती है, उसे चलानेके लिए विद्युत को थर्मल से, सब स्टेशनमें, वहां से डी.पीमें, डी.पी से मिटरमें और फिर, मिटरसे एलिमीनेटर द्वारा चला सकते है। यथा अहं ब्रह्माऽस्मि, तत्त्वमसि, अयंमात्मा ब्रह्म, प्रज्ञानं ब्रह्मादि महावाक्यरूप साक्षात् साधनको समझनेका सामर्थ्य सबमें नही होता।

अति प्राचींन कालसे यह प्रश्न उठता है, किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च संप्रतिष्ठाः। अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्,श्वेत॥ केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः। केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति, केन ॥ अनादि कालसे हम सत्यान्वेषण कर रहे है। कई प्रश्न हमारे मनमें उठते है। हम कहां से आए, हमारे जीवनका अर्थ क्या है, यह सृष्टि किससे उत्पन्न हुई, कौन इसका संचालक है, किसने बनाए होंगे ये, अनन्त ब्रह्माण्ड, क्यों बनाए होंगे, कब बनाए होंगे, इनका नियमन कौन करता होगा, इसको बनानेका सामान कहां से लाया गया होगा, कहां बैठकर, ये सारे ब्रह्माण्डका निर्माण किया होगा, कितना समय लगा होगा, कौन उसका सहयोगी होगा? इत्यादिका अनुसंधान, अन्वेषण एवं संदर्भ के लिए ऋषिजनोंने अथक प्रयत्न किए।

हमारे महामनीषियोंने, वनमें, गिरीकंदराओंमे, तप एवं गुरूपसदन द्वारा इसे प्राप्त किया है। इस परम सत्यके साक्षात्कार के षड्दर्शनादि अनेक मार्ग है। येनयद्दृश्यतेतत्तु तेनतत्सृज्यतेजगत्। दृष्टस्यभ्रान्ति रूपस्त्वात्दर्शनं सृष्टि रूच्यते। हमें जो भी दिखता है, वह हमारी स्थिति

का परिणाम हैं । एक बडी अर्धनारीश्वर की मूर्ति को कुछ लोग वाम भाग से देखते है, उनको मूर्ति में माताजी दिखते है, जो दक्षिण भाग से देखते है, उसे उसमें शिवजी लगते है, किसीको पीठ दिखती है, किसीको मुखारविन्द दिखता है तो, किसीको चरणकमल, यह दृष्टा की स्वयं की स्थिति का ही परिणाम है । परमात्मा के पूर्ण दर्शन के लिए तो मूर्ति की चारों तरफ परिक्रमा करनी पडेगी । वैसे ही शास्त्रकारों ने परमात्मदर्शन के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण - अभिगम बताए, जो शास्त्र बन गए ।

वन, पर्वत, अरण्योंमें जाकर तप किया । ब्रह्मचर्य एवं संयम किया, तब जाकर परमात्माकी हि कृपासे ज्ञान हुआ । **तपसा ब्रह्म विजिज्ञस्व, त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः, तपसा ब्रह्मचर्येण विद्यया श्रद्धया च सम्पादितः । प्रजावतां । ये वाप्याश्रमधर्मेण प्रस्थानेषु व्यवस्थिताः, तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया, दीर्घकालाऽऽसेवितो निरन्तराऽऽसेवितः सत्कारासेवितः तपसा ब्रह्मचर्येण विद्यया श्रद्धया च सम्पादितः । तस्यै तपोदमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वांगानि सत्यमायतनम् -** केनोपनिषद् ४.८। तप के प्रभावसे इन महामनीषियों के पवित्र हृदयमें ज्ञानका वाणीके रूपमें प्रादुर्भाव हुआ, जिसको ऋषियोंने श्रवण किया, जो श्रृतिके रूपमें प्रतिष्ठित हुई ।

परमात्मा एक ही है, वह अनादि अनन्त है । पूरे ब्रह्माण्डोंका सर्जक, पालक एवं प्रलयकाले संहारक है । उसको जाननेका सामर्थ्य न तो वाणीमें है, न मन, बुद्धि आदिमें है, क्योंकि ये सब उनके बलसे हि चलते है ।

सत्य आत्मन आकाशः सम्भूतः. ब्रह्मविदाप्नोति ... तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः । यो वै स बहिर्धा पुरुषादाकाशो यो वै सोऽन्तः पुरुष आकाशो योऽयमन्तर्हृदय आकाशः छांद.। **तस्माद्वा एततस्मादात्मन आकाशः सम्भूत -** तैत । **एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इमानि च पञ्चमहाभूतानि पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतींषीत्येतानीमानि च क्शुद्रमिश्राणीव। बीजानीतराणि चेतराणि चाण्डजानि च जारुजानि च स्वेदजानि चोद्भिज्जानि चाश्वा गावः पुरुषा हस्तिनो यत्किञ्चेदं प्राणि जङ्गमं च पतत्रि च यच्च स्थावरं सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म** ऐते.उप.॥ यह

समग्र ब्रह्माण्ड, सब देवगण तथा ये पञ्चमहाभूत, पृथ्वी, वायु, आकाश, जल तथा ज्योतितत्त्व तक सब और हर प्रकार के बीज और अण्डज जीव, स्वेदजं जीव, गर्भज (जरायु) जीव, तथा सभी वनस्पतियाँ, उद्भिज (अंकुरित होने वाले पौधे), पशु, पक्षी, मानव, जलचरादि परमात्माने उत्पन्न किए । गीतामें भी कहा कि **तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रद: पिता,** सबका पिता है । ये हम सत्यकी बात करते है, कोई नाम नहीं लिया अब तक । ईसाइ - इस्लाम भी मानते है, कि यह सृष्टि परमात्माने, प्रभुने, जिससने, खुदाने बनाई है । सभी धर्म अपने संप्रदायप्रवर्तक या परमात्मा को सृष्टिका पिता मानते है ।

चलो, सत्यका परिचय ज्यादा करते है । सृष्टि बनानेके बाद परमात्मा ने स्वयं उसमें प्रवेश किया, **ममैवांशो जीवलोके** ब्रह्माण्डमें जितने हि जव है वे मेरे अंश है । **प्रकृतिंस्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनःपुनः** मै हि अपनी प्रकृति से ब्रह्माण्डकी रचना करता हुं, यथा कारण भी मै, कार्य भी मै, उपादान (साधन) भी मै, पंचमहाभूत भी मै, प्रत्येक जीवात्मामे आत्मा भी मै हुं ।

सर्वस्यचाहं हृदि सन्निवष्टो सबके हृदयमें मै बैठा हुं । ये सारे ब्रह्माण्डों का सर्जन, नर्तन, विसर्जन, संवर्धनादि करनेवाली एक महा शक्ति है । हम इसको एक नाम देते है **सत्य** । **तस्मात् सत्यं परंब्रह्म सत्यमेव परं तपः । सत्येन वायुरभ्येति सत्येन तपते रविः ॥ सत्येनाग्निर्दहेन्नित्यं स्वर्गं सत्येन गच्छति । सत्येन चापः क्षिपति पर्जन्यो** ॥ इस कथित सत्य से पूरे ब्रह्माण्डों की संरचना हुई है, वो ही पालक भी है और पुनः सब उसमें ही विलीन हो जाता है ।

वह अनादि अनन्त है, क्योंकि जब हम कोई मकान देखते है, तो यह सुनिश्चत है की मकान बनानेवाला मकान बननेका पूर्वसे होगा ।

दूसरीबात, वह कर्ताकी बुद्धि-युक्तिका आश्रयसे ही मकान बना होगा। एक टेबल या यंत्र बनानेसे पहले वह कर्ता के मनमें तैयार होता है, फिर उसका नक्शा बनता है और अन्तमें वह आकार में परिणत होता है । कर्ता कार्य से भिन्न होता है, **घट दृष्टा (कर्ता) घटात्भिन्नः** घट बनानेवाला कुम्भार घट से अगल होता है ।

तीसरीबात यह है कि, वह करण या साधन (उपादान) कहांसे लाता होगा इत्यादि ? परमात्ममा तो महानिमित्तोपादन, महाकारण है ।

एकएव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः। एकधाबहुधा चैव दृश्यते जल चन्द्रवत् ॥ स अन्तर्बहिर्प्रविश्य स्वयमेव विभाति उसमें समग्र ब्रह्माण्ड है और ब्रह्माण्ड के प्रतिकणमें, उनकी सत्ता विलसित है । क्या मिट्टीसे सुगन्ध नहीं आती, उसमें बोया हुआ बीज, वृक्ष नहीं बनता, यथा उसमें चैतन्य तो है, हवामें प्राणवायु नही है, जो सब जीवोको प्राण पूरता है, वैसे ही जलमें जीवन है, जिसके बीना जीना सर्वथा असंभव है ।

समग्र ब्रह्माण्डका जनक परमात्मा है, वह कहां बैठा है? **वेनस्तत् पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्। तस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वं स ओतश्च प्रोतश्च विभूः प्रजासु,**यजुर्वेद॥ **स ओतश्च प्रोतश्च -** बृह. **स ईक्षत - ऐते सोऽकायत बहुस्याम् प्रजायेयेकि -** तैत. छांदो ॥ **बहिः अन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च । सूक्ष्मत्वात्तत् अविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥ यो योनिमधितिष्ठत्येको येनेदं सर्वं विचरति सर्वं -** शिवाथर्व . श्वेत.॥ ब्रह्माण्ड के प्रत्येक कणमे एवं कालके प्रत्येक क्षणमे उनकी सत्ता विलसित हो रही है । **एकं सर्वगतं व्योम बहिरन्तर यथा घटे। नित्यं निरन्तरं ब्रह्म सर्वभूतगणो तथा॥** जिस प्रकार सर्वव्यापी एक आकाश घटके भीतर भी है ओर बाहर स्थित है, उसी तरह नित्य ओर निरन्तर ब्रह्म सब भूतों में स्थित है अर्थात् शरीर के भीतर ओर बाहर आकाश है, दोनो आकाश एक ही है ओर आकाश में भेद नहीं है । **एकएव हि भूतात्मा भूतेभूते व्यवस्थितः । एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्** - ब्र.बिं.उप.॥ वह दिखता नहीं यद्यपि उसकी सत्ता विद्यमान है जैसे **वन्हिर्यथा योनिगतस्य मूर्तिर्न दृश्यते नैव च लिङ्गनाशः** , श्वेत ॥ **तिलेषु तैलं ॥ गवां सर्पि शरीरस्थं न करोत्यंग पोषणम्...एवं सर्वविश्वस्थ सर्पिवत्परमेश्वरः** महाभारत के वनपर्व अर्थात् जैसे काष्टमे अग्नि है, तिलमे तेल है, गायके शरीरमें घी है, वैसे ही, परमात्मा पूरे ब्रह्माण्डमें है । ब्रह्माण्ड के अन्दर, बहार सर्वत्र परम चैतन्य जो विलसित हो रहा है, वह परमात्मा है । **यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽश संभवम्,** गीता॥ **कीटादि ब्रह्म पर्यन्तं प्राणभ्रत्सुसमेषु च चेतना दृश्यते सापि शक्तिरीश्वर**

संज्ञिता छोटेसे कीटसे लेकर ब्रह्मा पर्यन्तकी सृष्टिमें जो चेतना दीखती है वो ही परमात्मा की शक्ति है। अणु-परमाणु में बसा चैतन्य ईश्वरीय शक्ति का साक्षात्कार है। अतः सारी सृष्टी में जो बसा है, चैतन्य स्वयं परमात्मा, परम सत्य है।

यहीं सत्य, पूरे सृष्टि चक्रको चलाता है, ऋतुओंका नियमन, उसीसे हि होता है। **भीषास्माद्वातः पवते। भीषोदेति सूर्यः। भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पञ्चम इति**, तै.उप। ग्रहोकी गति, पृथ्वीका भ्रमण, वायुका चलना, सूर्यका उदयास्त, वर्षादिमें, इस महाशक्तिका दर्शन होता है। मानव ही नहीं, पशु-पक्षी, वनस्पति सबकी बुद्धिको वही प्रेरणा देता है। **हृदिस्थं सर्वभूतानां प्रेरकं सर्ववस्तुषु। तस्मात्सर्वगतं विश्वं स एकः परमेश्वरः**। कच्छ के भूचाल में, हमारे घर धराशायी हो गए थे। मैंने देखा हमारे घरके सामने, पांच मंजिलवाला फ्लैट धराशायी हो गया था, जो बडे एन्जिनीयरने बनाए था, किन्तु पक्षीयोंके घोंसले यथावत् थे, उनके अण्डे भी नहीं तूटे थे। न हाथ, न पैर फिरभी इतना सुन्दर ही नहीं बुद्धिपूर्ण घोंसला बनानेकी बुद्धि कहां से आई ? पशुपक्षी, भाषा न होते हुए भी अपना संसार, व्यहार चलाते है। प्राणी मात्रको क्षुधा-तृषा तृप्तिकी युक्ति, स्वरक्षणकी शिक्षा कौन देता है, **योमे गर्भ गतस्याऽपि पूर्वं संचितवान्पयः** जन्मके पूर्व, माता के उदरमें दूध कौन भरता है, वेदव्यासजी कहते है, वही **सत्यं परं धीमहि** सत्यका मैं ध्यान करता हुं।

भागवतमें तो ब्रह्मादि देवताओं द्वारा जो गर्भस्तुति की है, जिसमें इसी सत्यका वर्णन है। **सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये। सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः**श्रीमद्भागवत - १०.२.२६॥ श्रीदेवकी माताजी के गर्भमें सत्यस्वरूप का दर्शन करते हुये ब्रह्मादि देवता यह संसार बहुत महान है, अत्यंत विस्तृत है।एक जन्म में इस पूरे संसार को देखना या कहते हैं, प्रभो, आप सत्यव्रत हैं। आपकी प्रतिज्ञा सर्वथा सत्य है, आप ही परम सत्य हैं, सृष्टि के पूर्व, वर्तमान में और भविष्य में भी आप सत्य हैं तथा जगत् के निमित्त एवं उपादान कारण आप ही हैं। आप सत्य के भी सत्य हैं। आप ही सत्यनारायण हैं। प्रभो, हमलोग आपकी शरणागति एवं प्रपत्ति करते हैं।

श्रुति एवं स्मृति में कहा है - **सत्यमूलं जगत्सर्व्वं सर्व्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्** । इस प्रकार सत्य की महिमा प्रतिष्ठित है, सत्य ही शाश्वत शक्ति है । सत्यसे ही वृष्टि होती है, सूर्य तपता है, ऋतुए होती है, **सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः । सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥ सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मःसदाश्रितः । सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम् । सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः । सत्येन लोकं जयति सत्यन्तु परमं तपः । तस्मात् सत्यं परं ब्रह्म सत्यमेव परं तपः । सत्यमेव परो यज्ञः सत्यमेव परं श्रुतम् ॥ सत्यं यज्ञस्तथा वेदा मन्त्रा देवाः, सर्व्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् । सत्यमूलं जगत् सर्व्वं सर्व्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ।** इस जगत के अन्दर जो कुछ भी है वह सत्याश्रित है, सत्य ही सबका मूल है ।

ये सत्य कैसा है - **सच्चिदानंदरूपाय विश्वोत्पत्यादि हेतवे । ताप त्रय विनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः** भाग. अर्थात् भगवान सत-चित-आनंदघन स्वरूप है, विश्वकी उत्पतिके हेतु हैं । ऐसे भगवान श्रीकृष्णको हम नमस्कार करते हैं । वे सच्चिदानन्दघन स्वरूप है, जैसे सुवर्ण को चाहे गरम करके पिघालो, छेदन करो, काटो, घीसो, अन्दर-वहार सर्वत्र, सोना ही है, वैसे हि परमात्मा सत्यरूप-आनन्दस्वरूप-ज्ञान स्वरूप है । **केनाप्यबाधितत्वेन त्रिकालेऽप्येकरूपतः। विद्यमानत्वमस्त्येतत्सद्रूपत्वं सदा मम ॥९॥ निरुपाधिकनित्यं...**वरोहोपनिषद्.३.९॥ यह सत्ता-शक्ति,देश-कालाबाधित है, अनादि-अनन्त है, सत्य है ।

नारायण साक्षीरूपेण सबके अन्तःकरणमें बिराजित है, क्योकि जीवात्मा अपने कर्मोका फल भोगता है, सुखी,दुःखी होता है । **यद्वदत्सूर्योऽभ्युदिते स्वव्यवहारं जनः कुरूते**, सूर्योदय होते हि लोग प्रवृत्त होते है, सूर्य कुछ नहीं कहता । सोकर उठते है तो अच्छी नींद की अनुभूति कौन करता है, स्वप्नमें देखे विविध व्यवहारोंका भी वह साक्षी है, जाग्रतका भी वही साक्षी है । **प्रदीपे दीप्यति चौरस्तु वित्तमपहरति** श्री आद्यशंकराचार्यजी कहते है, कि दिपक साक्षी है, वह चोर को चोरी करनेकी प्रेरणा देता, न ही भक्तको पूजा करनेका । जैसे, एक परिक्षाके कक्षमें, परिक्षककी उपस्थिति किसी विद्यार्थीको प्रश्नके प्रत्युत्तर नही देती, न ही सही गलतका परिणाम बताती । साक्षी आत्माकी उपस्थितिसे, तो मन, बुद्धि, इन्द्रिया

काम करती है, अपने-अपने कर्मोंका फल भोगती है । परम सत्यको आत्मसात् करनेका, जो निष्ठायुक्त प्रयास करते है, वो हि व्रत है ।

हमलोग इसे नारायण कहते है, शास्त्र के आधार से नारायण, **नारा जलं अयनं स्थानं यस्य, नराणां जीवानां समूहो नारं तत्रायनं स्थानं यस्य नारायणः। सारूप्यमुक्तिवचनो नारेति च विदुर्बुधाः । यो देवोऽप्ययनं तस्य स च नारायणः स्मृतः ॥ नाराश्च कृतपापाश्चाप्ययनं गमनं स्मृतम् । यतो हि गमनं तेषां सोऽयं नारायणः स्मृतः ॥ नारञ्च मोक्षणं पुण्यमयनं ज्ञानमीप्सितम् । तयोर्ज्ञानं भवेद्यस्मात् सोऽयं नारायणः स्मृतः** ब्रह्मवै.श्रीकृष्णजन्मखण्डे॥ **आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः । अयनं तस्य ताः पूर्व्वं तेन नारायणः स्मृतः** विष्णुपुराणम् ॥ **नाराजातानि तत्त्वानि नाराणीति विदुबुधाः । तान्येव चायनं तस्य तेन नारायणःस्मृतः। यच्च किञ्चिज्जगत् सर्व्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा । अन्तर्बहिश्च तत् सर्व्वं व्याप्य नारायणः स्थितः॥ प्रकृतेः पर एवान्यः स नरः पञ्चविंशकः । तस्येमानि च भूतानि नाराणीति प्रचक्षते ॥ तेषामप्ययनं यस्मात्तस्मान्नारायणः स्मृतः ॥ क्वचिन्मन्वन्तरे नरनाम ऋषेरपत्यतां गतः इति नारायणः ॥ नराणामयनाच्चापि ततो नारायणः स्मृतः** महाभारते॥ इन सबका सारांश यह है कि, नारा अर्थात् जलमें शयन करनेवाले, समस्त जीवों के, जडचेतन पदार्थोंमें चेतनारूपेण जो स्थित है वह नारायण । जीवमात्र अपने पापोंका क्षय करके, जहां निवास करता है और जिसमेंसे समग्र ब्रह्माण्डोकी उत्पत्ति हुई है, महाविराट, सबका अयन या आश्रयस्थान जो है, वह नारायण । नर ऋषिके कुलमें जन्मलेनेका कारण नारायण । **यथा कीटाणवः सूक्ष्मा प्राणीनां शोणितोदके नवानवा प्रजायन्ते प्रलीयन्ते नवानवा** ॥ जैसे रक्तमें एनेक कोष उत्पन्न होते है-विलीन होते है, वैसे जिसके अन्दर समग्र जीव निवास करते है और जो समग्र जीवोंमें निवास करता है, वह नारायण, जो अन्तर्बहिः सर्वत्र व्याप्त है । हमने **सत्य** का विचार किया, **नारायण** का भी विचार किया । अब जरा, व्रतको समझ लेते है ।

व्रत **सत्यत्वेन स्तुवन्ति सत्यव्रतमिति । सत्यं व्रतं सङ्कल्पो यस्य । व्रतानां सत्यमुत्तमम् ॥ व्रतंनाम वेदोक्त विधि निषेधानुष्ठैवअत्यम्** शांडि.॥ **पुण्यजनकोपवासादि । अभुक्त्वा प्रातराहारं स्नात्वा चैव समाहितः,**

उपवासेष्वशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते । सूर्य्यादिदेवताभ्यश्च निवेद्य व्रतमाचरेत् ॥ ब्रह्मचर्य्यं तथा शौचं सत्यमामिषवर्ज्जनम् । व्रतेष्वेतानि चत्वारि वरिष्ठानीति निश्चयः॥ देवेभ्यो निवेद्य पूजनीयद्रव्यादि दत्त्वा व्रतमाचरेत् व्रतं कुर्य्यात् म.भा.व.पर्व **। भार्य्या भर्त्तृव्रतं कुर्य्यात् जायायास्तु पतिस्तथा । असामर्थ्यात् द्वयोस्ताभ्यां व्रतभङ्गो न जायते॥ तद्ध्यानं तज्जपः स्नानं तत्कथाश्रवणादिकम्** दे.पु ॥ **स्वकर्त्तव्यविषयो नियतः सङ्कल्पो व्रतमिति ।** सत्यकी आराधना, सत्य प्राप्ति का संकल्प एवं निष्ठायुक्त प्रयास, अभ्यास, पवित्रता, शूचिता, ब्रह्मचर्यादि पूर्वक, देवतार्चनादि की विधिवत् आराधना, जप, ध्यान, उपासना को व्रत कहते है । व्रत सपत्नि करना शास्त्र बताता है, यद्यपि स्वास्थ्य प्रतिकूलता या पति की अनुज्ञा से एक भी व्रत कर सकते है । उपवास करनेमें स्वास्थ्य की प्रतिकूलता हो तो मिताहार-युक्ताहार करके भी व्रत कर सकते है ।

ऋग्वेद में वृत शब्द का प्रयोग इस प्रकार हुआ है - **स्वकर्मणो नियतःकर्म संकल्पो व्रतम् - शास्त्रोदिति हि नियमो व्रतं तच्च तपो मतम्/नियमस्तु विशेषास्तु व्रतस्यैव दमादयः** संकल्प आदेश विधि निर्दिष्ट व्यवस्था, वशता, आज्ञाकारिता, सेवा, स्वामित्व, व्यवस्था, निर्धारित उत्तराधिकर वृत्ति आचारिक कर्म प्रवृत्ति में संलग्नता रीति धार्मिक कार्य उपासना, कर्तव्य अनुष्ठान, धार्मिक तपस्या उत्तम कार्य आदि के अर्थ मे है। वृत से ही व्रत की उत्पत्ति मानी गई है । शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है- **व्रतेन त्वं व्रतपते समक्तो विश्वाहा सुमना दीदिहीह । अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि ॥ व्रतमुपैष्यन्ब्रुयादग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि,** अथर्ववेद ॥ हे परमात्मा, व्रतों के पालक, मैं व्रत धारण करता हूं । वैदिक संहिताओंमें, कहीं-कहीं व्रतको किसी धार्मिक कृत्य या संकल्प संलग्न व्यक्ति के लिए व्यवस्थित किया गया है । ब्राह्मण उपनिषदोंमें बहुधा अधिक स्थलों पर व्रत का दो अर्थों में प्रयोग हुआ है - एक धार्मिक कृत्य या संकल्प तथा आचरण एवं भोजन संदर्भमें और दूसरा उपवास करते समय भक्ष्य अभक्ष्य भोजन के संदर्भ में। **व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्। दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्ध्या सत्यमाप्यते** यजु. १९.३०। शब्दार्थ -व्रतेन..व्रत से, सत्यनियम के पालन से मनुष्य, दीक्षां..दीक्षा को, प्रवेश को, आप्नोति..प्राप्त करता है, दीक्षया...दीक्षा से,

दक्षिणां...दक्षिणा को, वृद्धि को, बढ़ती को, आप्नोति...प्राप्त करता है । दक्षिणा...दक्षिणा से, श्रद्धां...श्रद्धा को, आप्नोति...प्राप्त करता है और सदा, श्रद्ध्या...श्रद्धा द्वारासत्यं...सत्य कोआप्यते...प्राप्त किया जाता है । व्रत से दीक्षा मिलती है, दीक्षा से दक्षिणा (दाक्षिण्य), दक्षिणा से श्रद्धा और श्रद्धा से सत्य की प्राप्ति होती है। किसी ध्येय सिद्धि के लिए संकल्प बद्ध होना, संनिष्ठ प्रयास करना, आहार, विहार, व्यवहार के लिए सुनिश्चत होने को व्रत कहते है ।

सरकसमें या किसी, संगीत समारोह में जो सुन्दर प्रदर्शन होता है, वह सुदीर्घ कालकी तपस्या, व्रत एवं प्रयत्नों का ही फल है, निरन्तर अभ्यास का फल है । क्रिकेट कोच पहले, प्रशिक्षणार्थी को, पूरे मैदानका, चक्कर लगवाते है, नियत पोषाक पहनातें है, आहारादिके नियम बताते है, खेलने की पद्धति सिखाते है, शनैःशनैः प्रशिक्षणार्थी, में श्रद्धा का उदय होता है, यह व्रत एक उत्तम साधन है, यत्न भी है । **व्रियते स्वर्गं व्रजति स्वर्गमनेन वा,** वृषोदरादि -जिससे स्वर्गादिलोक की प्राप्ति हो, उसे व्रत कहते है । पूरे वर्षकी महेनतके उपरान्त ही अच्छे नंबर मिलते है ।

आगे, इसी श्रृखलामे, भाग-२ में व्यक्त (मूर्त) की आवश्यकता, अव्यक्त व्यक्त कैसे होता है, व्यक्ताव्यक्त का भेद, अव्यक्त कब, कैसे और क्यों व्यक्त होता है, व्यक्त किस स्वरूपमें होता है, इस स्वरूपका आधार क्या है । भगवानको ब्राह्मणप्रिय क्यों कहा, स्वयं अपना ब्रत बताने क्यों आये, स्वयंकी पूजाकी बात भगवान क्यों करते है, एक हि व्रत से भिन्न-भिन्न फल क्यो, किसीको पुत्र-किसीको कन्या, साधु वणिक को क्यों बार-बार दुःख हुआ,काभगवान शाप देना, नांवका अदृश्य होना, शतपुत्रोंका नाश होना और व्रतसे पुनः प्राप्ति, व्रत करनेवालोका पुनर्जन्म क्यों हुआ इत्यादि संशयोंका निवारण करनेका यथामति प्रयास किया है ।

सत्यत्वेन स्तुवन्ति सत्यव्रतमिति । व्रतानां सत्यमुत्तमम् ॥ समग्र ब्रह्माण्डोंका सर्जन-पालन-प्रलय करनेवाली, एक नित्य अनादि अनन्तशक्ति है, जिसे हम **सत्य** कहते है । **ॐ खं ब्रह्म** । **एतस्मिन्नु खलु अक्षरे गार्गि आकाश ओतश्च प्रोतश्च**, बृ.उप.।यह **नारायण** स्वरूप ब्रह्माण्डके कणकणमें विलसित है और इस सत्यरूपकी शरणागति के संकल्प हि **व्रत** है, वो हि सत्यनारायण व्रत है।

प्रथमोध्याय

व्यास उवाच - व्यासजी बोले...

कथाके आर्षदृष्टा श्री कृष्णद्वैपायन, भगवान वेदव्यासजी है। व्यासजीका समग्र जीवन विश्वोत्थानार्थ ही रहा है। हमारे यहां पुराणादि अध्यायों में उवाच का भी अतिमहत्त्व है। इसे भी मन्त्र मानते है, जैसे की दुर्गासप्तशतिमें उवाच मन्त्रों की भी आहुति दी जाति है (मार्कण्डेय उवाच स्वाहा, देव्युवाच स्वाहा, देवा ऊचुः इत्यादि)।

कौन, कब, कहां और किस अवस्थामें बोलता है, इसका अत्यन्त महत्व बनता है। भारत श्रीलंका के क्रिकेट मैच में, सचीन तेंडूलकर आउट होते है और नुक्कडके किनारेकी, पानकी दुकानपर, पानखाकर पीक लगाते हुए, कोई अपना अभिप्राय देता है कि, सचीनको ये स्ट्रोक छोड देना चाहिए, गलत खेला। किन्तु, कपिलदेव या सुनिल गावास्कर अपनी प्रतिकृति देते है, तो आप समझ सकते है कि, मान्यता, किसके बोलनेकी होगा ? पहले हम यें तो जान ले कि व्यासजी है कौन ? तभी तो हमे उनके बोलनेका महत्त्व प्रतीत होगा।

इतिहाससमिमं चक्रे पुण्यं सत्यवतीसुत:।। सत्यवतीनंदन महर्षि व्यास ने अपनी तपस्या एवं ब्रह्मचर्य की शक्ति से सनातन वेद का विस्तार करके, पंचमवेद स्वरूप, महाभारत (इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्) जैसे विश्वका सबसे बडे महाकाव्यका निर्माण किया है, जिसमें श्रीमद् भगवद् गीता जैसा अनुपम ग्रंथ समाविष्ट है। अष्टादश पुराणोंकी (पुरा नवं पुराणमिति -पुरापि नवमिति पुराणश्चेति व्युत्पत्तिः) रचना भी इस महान वेद व्यासजीने किया है। प्रस्थानत्रयीमें, गीता, ब्रह्मसूत्र जैसे तर्कप्रस्थान (वैज्ञानिक तर्काभिगमयुक्त) भी उनकी कृपाका प्रसाद ही है। इसलिए प्रायः कहा जाता है कि, व्यासोच्छिष्टं जगत् सर्वम् - जग का सर्व सारस्वत वाङ्मय व्यास के मुख की झूठन है। वैदिक वाङ्मय में इनका अत्यानुपम योग दान है। इतना असामान्य कार्य कोई सामान्यजन कदापि नहीं कर सकता, और इसलिए ही उनको भगवान् श्री विष्णुका ज्ञानावतार मानते हुए कहा जाता है कि - व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपायविष्णवे। नमो वै

ब्रह्मनिधयेवासिष्ठाय नमोनमः॥ नमोऽस्तुते व्यास विशालबुद्धे फुल्लारविन्दायतपत्र नेत्रः। येनत्वयाभारततैलपूर्णःप्रज्वालितो ज्ञानमय प्रदीपः।। अर्थात् - जिन्होंने महाभारत रूपी ज्ञान के दीप को प्रज्वलित किया ऐसे विशाल बुद्धि वाले महर्षि वेदव्यास को मेरा नमस्कार है । **यो विध्याच्चतुरो वेदान् सांगोपनिषदो द्विज:। न चाख्यातमिदं विद्यानैव स स्यादिचक्षण:।। अर्थशास्त्रमिदं प्रोक्तं धर्मशास्त्रमिदं महत् । कामाशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितु बुद्धिना** ॥ महा. आदि अ.२:२८-८३। कोई भी विषय-विज्ञान व्यासजीसे अश्पर्श नहीं रहा है । **अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः । अभाललोचनः शम्भुर्भगवान् बादरायणः** ॥ ब्रह्मविष्णुमहेश्वर का वे स्वरूप माने जाते है ।

व्यासजी कुछ कहते है तो, वह अन्त्य प्रमाण (FINAL AUTHORITY) मानना सदैव यथोचित है । व्यासजी द्वैताद्वैत के उभयमत के आद्य प्रवर्तक भी है । श्री कृष्णद्वैपयनजी भगवानके अवतार है, वेदोंका व्यास-विस्तार करनेके कारण, उन्हें, वेदव्यास के नाम से संबोधित किया जाता हैं । सनातन धर्म् के परम गुरु भगवान वेदव्यास को सर्वप्रथम कोटीशः वंदन करते है? पहले

इस कथा का प्रारम्भ व्यास उवाच से होता है, मानो यह कथापुरूष का मस्तिष्क हो । हमारे यहां तन्त्रागमों में, अकथासन पर, शिवस्वरूप गुरू, ज्ञानरूप पराशक्तिके, साथ विराजमान है, ऐसा त्रिकोणासन (अ से अः एकभूज, क से त द्वितीयभूज, थ से स तृतीय भूज और हंक्षं रूपेण बिन्दुगत, जो समस्त मन्त्रो का दर्शनस्थान मानते) पर बिराजमाने है । किसी भी व्रतपूजार्चनादि कार्य के प्रारम्भ में, स्वशीर्ष पर गुरू का ध्यान-पूजा करते है । यहां व्यास उवाच का, ये भाव भी ले सकते है ।

एकदा नैमिषारण्ये ऋषय: शौनकादय:।
पप्रुच्छुर्मुनय:सर्वे सूतं पौराणिकं खलु ॥ १॥

एकदा नैमिषारण्ये - एक दिवस (काल) नैमिषारण्यमें (देश) - यह अति महत्वका प्रारम्भ है । हमारे यहां देश और कालका स्मरण सर्वप्रथम किया जाता है । इस सचराचर विश्वमें जो कुछ भी प्रतीयमान होता है, वह देशकाल का ही परिणाम-विवर्त है । यह प्रचलित मान्यतानुसार टाईम

एन्ड स्पेश के विचारोंका जनक आल्बर्ट आईन्स्टाईन है, किन्तु यह हमारी वैचारीक पराधीनता का प्रदर्शन है - प्रायः सेंकडो वर्षोकी विधर्मीयोंकी गुलामीने हमारी सोच-संस्कृति-साहित्य-गुरूकूल-विद्यापरम्परा ही नही, किन्तु, वैचारीक दिशाका परिवर्तन भी किया है। परिणामतः आज हमे वो ही स्विकार्य है, जो पाश्चात्य सभ्यतासे मिलता है। कालकी सापेक्षता का विचार हमारे यहां वेदकाल से ही वर्तमान है। हमारे यहां तो टाईम एवं श्पेश का विचार सभी धार्मिक विधि-विधानमें सर्वोपरि किया जाता है, क्योंकि हमारि सभ्यता के मूलमें वैज्ञानिक अभिगम ही है। हमारे यहां **देशकालौ संकीर्त्य** का विचार करते है और कर्माम्भमें संकल्प करते समय बोलते है - **अस्मिन्महति ब्रह्माण्ड..भारतवर्षे...अरण्ये..नाम्नि नगरे... मासे..पक्षे..तिथौ..वासरे..मुहूर्ते इत्यादि**। पृथ्वीको गोल स्वीकार करनेपर अन्यधर्मो मे विचारकों को मृत्युदंड मिला है, जो हमारे यहां अतिप्राचीन (प्रायः २० हजार से अधिक वर्षोसे) कालसे स्विकार्य है।

देश-कालकी सापेक्षता का विचार, शिवपुराण-विष्णुपुराण-योगवाशिष्ठादि ग्रंथों में सविस्तर वर्णन प्राप्त है - **केन मानेन कालेस्मिन्नायुस्संख्या प्रकल्प्यते। संख्यारूपस्य कालस्य कः पुनः परमो ऽवधिः ॥ कालादुत्पद्यते सर्वं कालदेव विपद्यते ॥ न कालनिरपेक्षं हि क्वचित्किंचन विद्यते ॥ यदास्यांतर्गतं विश्वं शश्वत्संसारमण्डलम् ॥ वाय.सं.यथा स्वप्ने मुहूर्ते स्यात्संवत्सरशतभ्रमः। तथा मायाविलासोऽयं जायते जाग्रति भ्रमः ॥ यो.वा. - अनादिनिधनः कालो रुद्रः सङ्कर्षणः स्मृतः। कलनात् सर्व्वभूतानां स कालः परिकीर्त्तितः - जन्यानां जनकः कालो जगतामाश्रयो मतः। परापरत्वधीहेतुः क्षणादिः स्यादुपाधितः - विष्णुपुराणे। १। २। १४। कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः। कालः स्वपिति जागर्त्ति कालो हि दुरतिक्रमः। कालो हि भगवान्देवः स साक्षात्परमेश्वरः - अनादिनिधनः कालो रुद्रः सङ्कर्षणः स्मृतः। कलनात् सर्व्वभूतानां स कालः परिकीर्त्तितः** ऐसे तो यहां सेंकडो प्रमाण है। यह पुस्तक विद्वद्वर्ग के लिए है यथा इन सभी संदर्भोका अर्थ की आवश्यकता नहीं है।

देश एवं काल का विचार परस्पर संदर्भमें ही किया जाता है, क्योंकि एकमें परिवर्तन से अन्य में परिवर्तन आएगा। भारतमें जो काल(समय) है वह

काल अमेरिका में नहीं हो सकता-इनका परस्परावलम्बन है और दोनों का साथमें ही विचार किया जाता है ।

एकदा - भगवत्कथा समाधिभाव में ही ज्ञात हो सकती है । यह कोई सामान्य वार्ता या कोई गद्य-पद्य संग्रह नहीं है । अतः श्रवणादि के लिये अत्यन्त मुमुक्षुभाव होना अत्यावश्यक है । ऐसा भाव बहुत वर्षो की तपश्चर्या एवं पुण्य से ही प्रादुर्भूत हो सकता है । ज्ञानीओं का समागन भी दुर्लभ होता हैं । **दुर्लभं त्र्ययमेवैतत् देवानुग्रहकारकम्, मनुष्यत्वं, मुमुक्षत्वं, साधुपुरुषसंश्रयम्** । मनुष्य जीवन, मुमुक्षुता एवं साधु-संत समागम दैवकृपा से ही प्राप्त हो सकता है । सर्व प्रथम मनुष्य जन्म होना ही दैवकृपा या पूर्व का पुण्योदय है **। भाग्योदयेन बहुजन्म समर्जितेन सत्संगमं च लभते पुरुषो यदा वै । नाशं विधायहि तदोयतते विवेक** ॥ भाग.॥ तथा **मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिध्दये ॥ गीता ॥ बीन हरि कृपा मिलहीं नहीं संता**, दीर्घकालीन व्रत-तपादि द्वारा, संचित पुण्य से ही ज्ञानी का सत्संग सम्पन्न हो सकता है । एकदा जब ऐसी उत्कण्ठा हुई तब यह कथा कही गई है । **अनित्यानि शरीराणि वैभवं न वा शाश्वतं □नित्यसन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः** □□समस्त प्राणियों का शरीर नश्वर है और न वैभव ही चिरस्थायी होता है □मृत्यु निरन्तर उनका पीछा करती है अतः मनुष्यों का कर्तव्य है कि वे सदैव धर्मानुकूल आचरण द्वारा आत्मकल्याण करना चाहिए □

नैमिषारण्ये - देश-स्थान का उपासनादि शुभकार्योमें अति महत्व है । कहेते है की स्तोत्र-जप-तपादि का फल स्थान के हिसाबसे बढ़ जाता है । **महानद्यां, अश्वस्थ सन्निधौ पार्थ, तुलसीवन संस्थितौ, शिवालये, तीर्थक्षेत्रे, गंगातटे, प्रतिमासन्निधौ** इत्यादि प्रायः स्तोत्रोंमे आता है, **पुण्यक्षेत्रं नदीतीरं गुहापर्वतमस्तकम्। तीर्थप्रदेशाः सिन्धूनां सङ्गमः पावनं वनम्॥** यथा व्रतोपासनादिमें स्थानका महत्त्व होता है । जहां **आशापाशविनिर्मुक्तो वननामा स उच्यते -** आशाओंका बंधन नहीं रहता - ममत्व कम हो जाता है उसे वन कहते है । **मोक्षप्रदं दण्डकादिकं नवारण्यं । यदुक्तं -दण्डकं सैन्धवारण्यं जम्बुमार्गश्च पुष्करं । उत्पलावर्त्तकारण्यं नैमिषं कुरुजाङ्गलं ॥**

हिमवानर्व्वुदश्चैव नवारण्यं विमुक्तिदं। ये जो दंडकारण्यादि-नैमिषारण्य नव अरण्य है, वे महापवित्र एवं मुक्तिदेनेवाले माने गए है ।

गीतामें कहा, **यथा दीपो निवातस्थो** वायुरहित स्थान जहां दिपक स्थिर रह सके, ऐसे विघ्नरहित स्थान का चयन करना चाहिए । घरमें जप तपादि में विघ्न आनेके अवकाश भी ज्यादा रहते है और चित्तस्थैर्य भी नहीं रहता - संसर्ग एवं संक्रमण ज्यादा रहता है । हम घरमें जप करते है, बरतन गीरता है, बच्चा रोता है - चित्त वहां चला जाता हैं । **संलापस्पर्शनि:श्वाससहयानासनाशनात । याजनाध्यापनाद्यौनात पापं संक्रमतेन्रीणाम।।** देवल. ३३ - देवलस्मृति में लिखा है कि किसी पापी का पाप दूसरे मनुष्य पर भी संक्रण कर लेता है । उसमें अनेक हेतु हैं । **यादृशैः सन्निविशते यादृशांश्चोपसेवते। यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग् भवति पूरुषः॥** व्यक्ति जैसे लोगों के साथ उठता बैठता है, जैसे लोगों की संगति करता है, उसी के अनुरूप स्वयं को ढाल लेता है । जैसे पापी के साथ बातचीत करने से, उसके स्पर्श से, उसकी सांस लगनेसे और उसके साथ चलने, बैठने से अथवा उसके साथ खाने एवं उसके लिये यजन करने से तथा उसे पढ़ाने से अथवा उसके साथ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करनेसे पापीका पाप, मनुष्य पर संक्रांत हो जाता है । **कोविद१९ में बार-बार सिखाया गया है- दो गजकी दूरी** । किसीके श्पर्श या आवाज का असर, हमारे चित्त पर पडता है, हम बैठे है, कोई पीछे से आकर आंख दबा देता है, तो हम श्पर्श से बता देते है कि भाई है यो बहन है या मित्र, क्योंकि इन सबकी स्मृतियां संस्काररूप से चित्तमें अंकीत होती है । हम अलग कमरेमें बैठकर जप करते है, तथापि कोई प्रिय या अप्रिय व्यक्तिकी आवाज से चित्तविक्षिप्त हो ही जाता है, पता चलता है कि ये रमणभाई आ गए - फिर उनकी आकृति मानसपट पर आजाती है और क्रमशः उनसे जूडी स्मृतिया आने लगती है । याद आ जाता है कि, उनसे पांच हजार लेने बाकी है । चित्तस्थैर्य नहीं रहता और विघ्नों परंपरा चालू हो जाती है । जिस कपडेमें पूजा के फूल रखते है, वह कपडा भी सुगंधिदार बन जाता है । अच्छे-बूरे विचार भी संक्रमित होते है ।

वायु पुराण में एक कथा है, **एतन्मनोमयश्चक्रं मयासृष्टं विसृज्यते । यत्रास्य शीर्यते नेमिः सदेशस्तपसः शुभः । अरण्येऽस्मिन्स्ततस्त्वैतन्नैमिषारण्य संज्ञितम् । भविष्यति यथार्थं वै ब्राह्मणानां विशेषणम्** ॥ योग में नेत्र के दो भौंहो के बीचवाले स्थान को निमिष (आज्ञाचक्र) कहते है । यहां मन को स्थिर करने की बात भी सत्यदर्शनार्थ यथोचित है । निमि का एक अर्थ मन भी है जहां मन स्थिर हो जाए वह स्थान - **नैमिषे चक्रतीर्थे तु स्नात्वा भरत सत्तमम्। सर्व व्याधि विनिर्मुक्तो, ब्रह्मलोके महीयते** । नैमिषारण्य का प्रायः प्राचीनतम उल्लेख वाल्मीकि रामायणमें भी संदर्भ है । इस तीर्थस्थलके बारेमें कहा जाता है, कि महर्षि शौनकके मनमें दीर्घ कालव्यापी ज्ञानसत्र करने की इच्छा थी। उनकी आराधना से प्रसन्न होकर विष्णु भगवानने उन्हें एक चक्र दिया और कहा कि, इसे चलाते हुए चले जाओ, जहाँ इस चक्रकी नेमि(परिधि) गिर जाए, उसी स्थलको पवित्र समझना और वहीं ज्ञानसत्र करना। नैमिषारण्य उत्तम तपोभूमि है ।

ऋषयः - ऋषि कौन है और वे वनमें क्या करते है**?** यह निम्न बाते के सारांश द्वारा समझते है ।

ऋषति प्राप्नोति सर्व्वान्मन्त्रान् ज्ञानेन पश्यति संसारपारं वा इति । ऋषयः संयतात्मानः - ऋषीन् ज्योतिर्मयान् सप्त - सप्तर्षि हस्तावचितावशेषाण्यधो विवस्वान् परिवर्त्तमानः - यज्ञेन वाचः पदवीयमायन् तामन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम् - ऋग् १०.७.१३। **त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य बाधतः।** ऋग्.६-१६-१३, यजु. १५-२२॥ **यज्ञादौ कर्मण्यनेन मन्त्रेणेदं कर्म तत्कर्तव्यमित्येवं रूपेण यो मन्त्रान्करोति व्यवस्थापयति स मन्त्रकृत् - । ऋषयः मन्त्र दृष्टारः । ऋषयस्तपसा वेदानध्यैषन्त दिवानिशम् । अनादिनिधना विद्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा ।। ऋषियोने जिसे सूना था । युगान्तेन्तर्हितान् वेदान्तिहासानमहर्षयः । लभिरेतपसापूर्वमनुज्ञाताः स्वयंभूवा ।। यज्ञेनवाचः पदवीयमापन् तामन्विविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम्** - ऋग्. १०.७१.३। **स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः -** व्यासभाष्यम् । **दीर्घ कालाऽऽसेवितो निरन्तराऽऽसेवितः सत्कारासेवितः तपसा ब्रह्मचर्येण विद्यया श्रद्धया च सम्पादितः । प्रत्यर्धिर्यज्ञानामश्वहयोरथानाम् ऋषिः स**

यो मनुर्हितो विप्रस्ययावयत्सखः - ऋग्. १०.२६.५॥ **भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे । ततो राष्ट्रंबल मोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु -** अथ.१९.४१.१ **- वेदोत्पत्ति - बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः । यदेषां श्रेष्ठंयदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः -** ऋ.१०.७१.१॥

इन सभी प्रमाणों का सारांश - ऋषि मन्त्रोके दृष्टा है, अतःसृष्टि के आरम्भमें विभिन्न पदार्थो के, नामकरण की इच्छावाले, ऋषियों ने जो वचन उच्चारित किए वह वाणी का आदि स्वरूप (वेद) था । परमात्मा की प्रेरणा से ही इनकी हृदयगुहा में ज्ञान प्रकट हुआ । ऋचाओं के रूपमें वेदों का प्रागट्य हुआ है एवं आर्षदृष्टा ऋषियोंने उस दिव्यज्ञान को तप द्वारा आत्मसात् किया, यथा ऋषियों ने तप से ही श्रुति का श्रवण किया है और इस प्रकार ब्रह्मविद्या की उत्पत्ति हुई है । वे तो मात्र मंत्रो के अर्थ एवं शक्ति को आत्मसात् करके मंत्रो के दृष्टा बन गए । यज्ञादि कर्मो में इस मन्त्र से इस कर्म को करना चाहिए, ऐसी जो प्रस्थापित की । ऋषि, यज्ञो के प्रतिपादक, शुद्ध, पवित्र, ज्ञानी, बुद्धिमान एवं निष्पाप है, जीवनरथोके प्रेरक-संचालक है, सर्वत्र करूणा रखनेवालेको ऋषि मानते है । जो सबके कल्याण की भावना एवं आत्मरतिवाले है, वे ऋषि तप एवं दीक्षा प्राप्त करके ज्ञानार्जन करते है । वैदिक ऋषियों ने धर्म(सत्य) का साक्षात्कार (अनुभव) किया, **साक्षात्कृतधर्माणो ऋषयो बभूवु:** - ऋषियों ने मंत्रो के अन्तर्निहित सत्य का दर्शन किया और विश्वकल्याण की उदात्त भावनासे, उपनिषदों में और कर्मकाण्डमें उसे समाविष्ट किया ।

शौनकादयः **-** शौनक ऋषि भृगुवंशी शुनक ऋषि के पुत्र थे। ऋषि शुनक के पुत्र होनेके कारण **शौनक** नामसे प्रसिद्ध हुए । ये प्रसिद्ध वैदिक आचार्य थे। शौनक वैयाकरण तथा ऋग्वेद प्रतिशाख्य, बृहद्देवता, चरणव्यूह तथा ऋग्वेदकी छः अनुक्रमणिकाओंके रचयिता हैं । वे वास्तु-स्थापत्य एवं ज्योतिषके भी आचार्य थे ।

मुण्डकोपनिषदमें इन्हें महाशाल (**शौनको ह महाशाल**) कहा है । **एकदा नैमिषारण्ये ऋषयः शौनकादयः पृच्छन्ति विनयेनैव सूतं पौराणिकं खलुः** । वे विश्व के प्रथम कुलपति थे । उनके गुरूकुल मे ८८००० ऋषि, वैदिक

सभ्यताका अनुसंधान करते थे । महाभारत सहित अनेक पुराणों इसका संदर्भ मिलता है । **नैमिषारण्ये शौनकस्य कुलपतेर्द्वादशवार्षिके सत्रे** (म.भा.)-आध्यात्म विज्ञानका विश्वका सबसे बडा अनुसंधानकेन्द्र उनकी अध्यक्षतामें चल रहा था । जहां पदार्थविज्ञान, रसायण, खगोल, साहित्य, विमानविद्या, गणितविद्या जैसी अनेक विद्याशाखाए थी ।

अनेक ऋषियोंकी अध्यक्षताके साथ, सूतजीके पधारने पर, जो परिसंवाद हुआ, वहीं सत्यनारायणके व्रतके रूपमे प्रगटित हुआ है । भविष्यपुराणमें, यही सत्यनारायणकी कथा में **- एकदा नैमिषारण्ये ऋषयः शौनकादयः पृच्छन्ति विनयेनैव सूतं पौराणिकं खलुः** आया है ।

प्रपुच्छुर्मुनयः सर्वे - प्रश्न करनेके कई प्रकार होते है, जैसे कि कुछ अज्ञात बातको जानने के लिए, ज्ञात पर विश्वास दृढ करके निश्चयात्मकका के लिए, किसीकी परिक्षा लेने के लिए, स्वमतकी पुष्टि के लिए । यहां प्र उपसर्ग लगा है । **प्रकृष्यते इति, प्रकर्षयुक्तम् , प्रकृष्ट , उत्कर्ष, सर्वतोभाव, प्राथमिकता** (अग्रता) के अर्थमें है, यथा प्रश्न असामान्य उद्देश्यपूर्ण है । अब ये सूतजी कौन थे, वो भी जान लेंगे, तब ज्ञात होगा कि, यह व्रतकथा का प्रागट्य कैसे-कैसे महान तत्त्वचिन्तको की परिचर्या का परिणाम है । इसमें संशय करना स्वयंकी अज्ञताका प्रदर्शन ही है ।

सूतं पौराणिकं खलु - लोमहर्षणपुत्र उग्रश्रवाः सौतिः पौराणिको शौनकस्य कुलपतेर्द्वादशवार्षिके सत्रे ऋषीनभ्यागतानुपतस्थे (म.भा.) **पुराणमधीते वेद वा । पुराण-आख्यानाख्यायिकेतिहास पुराणेभ्यश्च** । - भगवान् वेदव्यासजी ने वेदों का व्यास-प्रस्तार करके ऋग्वेद पैलऋषिको, यजुर्वेद वैशंपायनऋषिको, सामवेद भरद्वाजऋषिको एवं अथर्ववेद सुमंतु ऋषिको दिया । पुराणोंका भी महत्त्व कम नहीं है **पुराणो पञ्चमोवेदः**। इस पंचम पुराणवेदको, अपने शिष्य रोमहर्षण को दिया, रोमहर्षण से उग्रश्रवाको प्राप्त हुआ, जो महाज्ञानी सूतज के नामसे सुप्रसिद्ध हुए । ऐसे संतका मिलना ही भगवत्कृपा है - **साधुपुरुषसंश्रयम् देवानुग्रहकारकम् - बीन हरि कृपा मिलहीं नही संता ।**

इज्याध्ययनदानानिविहितानिद्विजन्मनाम् । जन्मकर्मावदातानां क्रिया श्चाश्रमचोदिताः॥ भाग. ७.११.१३। कुछ लोग सूतजी को अब्राह्मण मानते

देते हैं। सूतजी अयोनिज हैं। पृथुजी के यज्ञ में बृहस्पति और इंद्रका भाग मिल जानेसे, यज्ञ कुण्ड से सूतजी की उत्पत्ति हुई। सूतजी ब्राह्मण ही हैं, सूत उनकी संज्ञा है, न कि सूत जाति । पद्मपुराण और वायुपुराणमें उनके प्रादुर्भाव की कथा है। **अग्निकुण्डसमुद्भूत: सूतो विमलमानसः**। लेकिन उनका पालन पोषण सन्तानहीन सूत परिवार ने किया अतः वे भी उसी से पुकारे गए। जैसे राजा उपरिचर तथा अद्रिका अप्सरा की कन्या सत्यवती तथा ब्राह्मण शक्तिपुत्र पराशरके सहयोग से उत्पन्न व्यासजी भी ब्राह्मण है। कैवर्त के द्वारा लालन पालन होने से सत्यवती दाशकन्या नहीं बन गयी। सूतजी का जन्म अग्निकुण्ड से ऋषियों द्वारा यज्ञके दौरान हुआ, जिनके दर्शनसे ऋषियोंके रोंगटे खड़े हो गये, क्योंकि इनके ललाट पर इतना तेज था। इनका प्रथम नाम रोमहर्षण हुआ - फिर उनके पुत्र उग्रश्रवा सूत । महर्षि श्री सूतजी साक्षात् ज्ञान स्वरूप थे, तभी तो शौनकादि ऋषियों ने इन्हें अज्ञानान्धकारका नाश करनेवाला सूर्य कहा । **अज्ञानध्वान्तविध्वंस कोटि सूर्यसमप्रभ। सूताख्याहि कथासारं मम कर्ण रसायनम्॥** सूतजीकी प्रतिभासे ही कल्पना कर सकते है कि, इस कथाके श्रवण के लिए ऋषियां क्यों उत्सकुक थे।

मत्स्यपुराण में आया है - **सूतमेकान्तमासीनं नैमिषारण्यवासिनः। मुनयो दीर्घसत्रान्ते प्रपुच्छुर्दीर्घसंहिताम् ॥ प्रवृत्तासु पुराणीषु धर्म्यासु ललितासु च। कथासु शौनकाद्यास्तु अभिनन्द्य मुहुर्मुहुः॥** सूतजी को उच्चासन पर बिराजमान करके ही प्रश्न पूछे है - ऐसा तात्पर्य है । **सूत सूत महाप्राज्ञ निगमागम पारग । गुरूस्वरूपमस्माकं ब्रूहि सर्वमलापहम् ॥** जब कुछ जाननेकी जिज्ञासा हो, तो समर्थ विद्वान-गुरू-संतके समीप गुरूपसदन होना पडता है, उन्हें उच्चास्थासीन-व्यासस्थान पर बिठाकर, प्रथम श्रद्धा से श्रवण करना पडता है, यह श्रवण मनको, सर्वथा निर्मल करनेवाला होता है ।

श्रवणकी प्रथमावधिमें वक्ताको समर्पित होना पडता है । **शरीरं चैव वाचं च बुद्धिन्द्रिय मनांसि च । नियम्य पाञ्जलिः तिष्ठेत्वीक्षमाण गुरोर्मुखम् । गुरुशुश्रुया काया शुद्धिरेषा सनातनी** - गुरू के लिए पूर्ण समर्पण, श्रद्धा एवं निष्ठा अनिवार्य है । जैसे नृत्य शिक्षा, संगीत शिक्षा में गुरू के

आदेशानुसार आयाम-अभ्यास करते है, नियमों का पालन भी करते है । हम डॉक्टर के पास जाते है तो, समर्पित होते ही है । डॉक्टर कहे मुंह खोलो - खोलते है, जोरसे सांस लो - लेते है, सो जाओ - सो जाते है, जीभ निकालो - निकालते है, आ-आ करके, जोरसे आवाज करो, हम वैसा करते है, आंखे बन्द करो - करते है, खोलो - खोल देते है । इतना ही नहीं उनके सूचनानुसार - आहार-विहार का, पथ्यापथ्य का, दवा लेना इत्यादि मानते है, तभी तो स्वस्थ होते है । हमें यदि हाथ-पांव में मोच आती है या गरदनमें दुःखता हो, तो फिजियोथेरोफिस्टके पास जाते है और उनके आदेशानुसार अंगोंको मोडते है, यहि है समर्पित होना । **करिष्येऽहं तवोदितम्** बस, वैसे ही भवरोग निवृत्यर्थ गुरूको भी, समर्पित होना पडता है । निष्ठा एवं श्रद्धा हि ज्ञानोपार्जनकी प्रक्रिया का आद्यचरण है ।

ऋषय: ऊचु: - ऋषिगण बोले (प्रश्न किया)

व्रतेनतपसा किंवा प्राप्यतेवाञ्छितंफलम्।
तत्सर्वंश्रोतुमिच्छाम:कथयस्वमहामुने!॥ २॥

व्रतेनतपसा किंवा - ऋषिगण को कुछ भी मुफ्तमें नहीं चाहिए । **व्रत एवं तप** के फलस्वरूप प्राप्ति चाहिए - प्रथम कुछ करनेकी बात कहीं, बादमें फलापेक्षा । हमारे पूर्वजोनें हमे यही सिखाया है, कि कुछ न्योछावर या प्रयत्नके उपारान्त प्राप्त होता है, वही न्यायोपार्जित, शुद्ध धन होता है (अन्यथा ब्लैकमनी)। वेदोंमें भी परमात्मा से बहुत याचना की है, यद्यपि प्रत्येक याचना के अंतमें कहा है **यज्ञेन कल्पन्ताम्** - हमें प्रयत्न से प्राप्त हो। यहां एकबार किसीने प्रश्न किया था, जब प्रयत्नसे ही प्राप्त करना है, तो प्रार्थना क्यों? सही बात..इसका उत्तर गीतामें भगवानने दिया है - **कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन** - तेरा मात्र कर्ममें ही अधिकार है, फलमें नही । अन्यथा, प्रयत्न करनेवाले सभी सफल हो जाते । कर्म स्वयं के अधिकारमें है, फलपर, हमारा सीधा अधिकार नहीं बनता, फल अन्याश्रित है । आमका पेड लगाया तो मिठी आम आनी हि चाहिए ऐसा नहीं, कभी-कभी अच्छा फल नहीं भी मिलता । **अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् । विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्** ॥ कर्म की सिद्धि जिन कारकों पर निर्भर करती है, वे हैं अधिष्ठान, कर्ता, करण, चेष्टा और दैव

(प्रारब्ध-पूर्व के संचित कर्म)। अधिष्ठानका आशय कर्ता के शरीर से है, कर्ता से तात्पर्य है कि कर्म कौन कर रहा है, करण का अर्थ है उपकरण एवं साधन है, चेष्टा वह प्रयास और लगन है, जिससे कर्म किया जा रहा है तथा दैवका तात्पर्य है दैवीय विधान एवं प्रारब्ध से निर्मित भाग्य ।

व्रतेन - व्रत शब्द की उत्पत्ति (**वृत्त वरणे** अर्थात् वरण करना या चुनना) से मानी गई है,। व्रत की विस्तृत चर्चा आगे कर चूके है, यथा यहां द्विरूक्ति की आवश्यकता नहीं है ।

तपसा - श्रुति वचन भी है - **तपसा चीयते ब्रह्म । ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत । इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरतब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति -** अथर्व.**११.५.१७। तपसा ब्रह्म विजिज्ञास्व,** तप द्वारा हि परमात्माकी (ब्रह्म) की प्राप्ति है । **तपसा शक्यते प्राप्तुं देवत्वमपि निश्चयात्। प्रजापतिरिदं सर्वं तपसै वा सृजत्प्रभः॥ यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि -** गीता। **सर्वं वै तपसाभ्यैति तपो हि बलवत्तरं । तथैववेदानृषयस्तपसा प्रतिपेदिरे - तत्त्ववैशारदीविभूषितव्या सभाष्योपेतम्,** पा.यो.**१/१४। तस्यै तपोदमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाःसर्वांगानि सत्यमायतनम्,** केनो**. ४.८।** हमने आगे देखा हैं कि, वेदोका प्रादुर्भाव ऋषियों तपसे हुआ हैं - यज्ञ एवं तप अति महिमावान् है । तप में देवता प्रतिष्ठित है, जपयज्ञ भगवान का ही स्वरूप है, जो वह सर्वदा अत्याज्य हैं, सर्वश्रेष्ठ कर्म है । चित्त की एकाग्रता ही तप है । देव-पितृ सब का मोदन तप से होता है । श्रीमद्भागवतमें आता है कि, ब्रह्माजीने पूरे ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति भी तप के द्वारा की है । ब्रह्मानुभूति के लिए तप आवश्यक हैं, चित्त की एकाग्रता भी तपसे सिद्ध होती हैं । तप का प्राधान्य इसलिए है कि पूरे ब्रह्ममाण्ड का सर्जन तप से हुआ है । वेदादि महाज्ञान का प्रागट्य भी तप से ही हुआ है, तप ही देवताओं का आयतन-आश्रय है । सबका आधार तप ही है । तप ही श्रेष्ठतम यज्ञ है । अन्नमनप्राणादि सबकी उत्पत्तिका मूल तप में ही है ।

१२वीं कक्षाकी विद्यार्थीनी ने, मनोमय मेडिकलमें जाना सुनिश्चित कर लिया और इसे प्राप्त करनेके लिए, उसने अपनी दीनचर्या बदल दी । खेलना-घूमना बंद कर दीया, टीवी-सिनेमा-सिरियल्स देखना बंद कर दीया । सहेलीयोंके साथ गपसप करनेका भी कम कर दिया, उनके

खानपान एवं रहनसहन में बहोत बदलाव आ गए । दिनमें १६ से १८ घंटे पढाई चालु कर दी । इसे कहते है व्रत (रहन-सहन में परिवर्तन) एवं तप (निज मनको सब और से हटाकर, पठनेमें लगाना)।

संक्षेपमें व्रत, सत्य को प्राप्त करनेका संकल्प (मन) है और तप उस प्राप्ति के पथपर प्रशस्ति-प्रयाण है (निश्चयात्म बुद्धि)। **मय्यर्पित मनोबुद्धि** के अनुसार मन-बुद्धि के समर्पित होने पर साध्य दुर नहीं रहता ।

केन – ऋषिगण अपनी जिज्ञासा प्रदर्शित करते हैं । यह प्रश्न परिक्षार्थ या संशय निवत्तिके लिए नहीं, सर्वजन हितार्थ - लोक कल्याण के लिए है । यहां जाननेकी जिज्ञासा हैं, अथातो ब्रह्म जिज्ञासा ।

प्राप्यतेवाञ्छितंफलम् - यहां शौनकजीकी अध्यक्षतामें बहोत बडा ऋषिवृंद है । सबकी कामना-ईच्छा एक हो यह संभव नहीं है । यथा कहां **वाञ्छितंफलम्,** जिसको जो फलकी इच्छा हो । प्रश्न सबका है । प्रयत्न के लिए सब तैयार है, कामना भिन्न भिन्न हो सकती है ।

तत्सर्वंश्रोतुमिच्छाम: - महाराज आप समर्थ है, यहां विश्वास प्रकट किया है कि आप हमें उपाय बताए, हम सूननेको तत्पर है ।

कथयस्वमहामुने! - संबोधन किया महामुने, मुनियोमें श्रेष्ठ । **मनुते जानाति यः,** मौनव्रती - **तपसस्तेजसा बालो दीप्तिमान् सूनृतो मुने ! । तपःसु रोचते चित्तं रुचिस्तेन प्रकीर्त्तितः ॥ दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः । वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते,**गीता ॥ संबोधनका अति महत्त्व है । लोग माता-पिता को सन्मान नहीं देते, लेकिन अपने साहब के पैर छूते है । कोई राजकारणी, कहीं उद्घाटन करता है, तो लिखते है मंत्रीश्री के करकमलों द्वारा समर्पित । कर-कमल किसे कहते है, जो रागद्वैष रहित व्यवहार करता हो, जिसका पूरा जीवन गूनाहित हो, उनको करकमल कैसे मान सकते है ? जो मौनव्रति हो, अनावश्यक भाषण देकर अपनी वाक्पुनिताका क्षय न करता हो, वाणीका व्यभिचार न करता हो, सत्य एवं हितभाषी हो । सुख-दुःखमें सम हो, **वीतरागभयक्रोध** में स्थिरबुद्धि हो उसे मुनि कहते है, उसमें भी सूतजी महामुनि है ।

इन महापुरूषों के परिचय से, अब आपको इस व्रतकथा के, गाम्भीर्य का स्पष्ट खयाल आया होगा। श्रवण के लिए प्रार्थना की है।

सूत उवाच – ऋषियोका भाव देख कर सूतजी बोले।

सूतजी का परिचय आगे दे चूकें है। अब तक की चर्चा से ज्ञात हो चूका होगा, कि यह कथा का प्रादुर्भाव जिन महापुरूषों से हुआ है, उनकी उज्ज्वल प्रतिभा के समक्ष हमरा कितना प्रभाव है, सूर्य के प्रचण्ड प्रकाश के सामने एक दिपक से भी कम।

नारदेनैव सम्पृष्टो भगवान् कमलापति:।
सुरर्षये यथैवाऽऽह तच्छ्रृणुध्वं समाहिता:॥३॥

ऋषियोंने सूतजी प्रश्न क्यों किया इसका कारण बताते है। **प्रच्छुर्मुनयः सर्वे**, प्रश्न उससे किया जाता है, जो श्रेष्ठ ज्ञानी हो। **अन्तेत्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्यः उपासते, तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः** अतः मनुष्य यदि शास्त्र विचार में कुशल नहीं है तो, उसे अन्य ब्रह्मनिष्ठ से ब्रह्मतत्व का श्रवण करना चाहिए। गीता में भी कहा है **परिप्रश्नेन सेवया**। उत्तम तत्वोंको, ब्रह्मज्ञानी से प्रश्न द्वारा जानना चाहिए। ऐसे श्रोता-वक्ता का संयोग कभी-कभी पुण्यकाल में ही होता है। श्रुति कहती है स्वाध्याय **प्रवचनाभ्यां मां प्रमदितव्यम्** - **विद्या सन्धिः प्रवचन संधानम्** (**तै**.उ) - **स्वाध्यायादिष्ट देवता संप्रयोगः -** पा.यो। स्वाध्याय-प्रवचनादि से ब्रह्मतत्व को जानने का प्रयत्न करना चाहिए। सत्संग द्वारा ब्रह्मतत्व को आत्मसात करना चाहिए। प्रश्न के चार प्रकार हैं १. जिज्ञासा – जानने की ईच्छा, २. परिक्षा – व्यक्ति को कुछ आता है या नहीं, ३. आत्मविश्वासवृद्धि या संशय निवृत्ति, ४. सार्वत्रिक कल्याण – कुछ बाते ऐसी होती है जिसको स्वयं जानते होते भी सार्वत्रिक कल्याण के लिए किसी बहुश्रुत के श्रीमुख से ग्रहण करना उचित होता हैं।

वक्ताकी भी कुछ मर्यादाए होती है, उनके वक्तव्यके गांभिर्यका महत्त्व होता है। **विरक्तो वैष्णवो, विप्रो वेदशास्त्र विशुद्ध कृत, दृष्टांत कुशलो धीर: वक्ता कार्यो निस्पृह:** - **इतिहास-पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्** – वक्ता

वेदशास्त्र के आधारपर, इतिहासपुराणादि के ज्ञाता होनेके साथ, दृष्टान्तकुशल होना चाहिए । आज तो, अधिकारानिधारका तो विचार ही मत करिए, इतने वक्ता बन गए है, पूछो मत । नव्वें प्रतिशत को तो, न संस्कृत का ज्ञान है, न शास्त्रोंका अध्ययन । वे केवल स्वकीय स्वार्थके लिए, स्वच्छन्दतासे, अनुकरणशील लोगोंको लूंटते रहते है **शिष्यवित्तोपहारकाः,** वे पाखण्डी है । न तो उनका आचरण शुद्ध है, न ही उनके विचार । शास्त्रक्तिका यथेच्छ अर्थ ऐवं अशास्त्रतीय वर्तन-व्यवहार से स्वयंको गौरवशाली मानते है, मनगडंत पीठ पर ही उपनयन अशास्त्रीय विवाह । ज्योतिष-वास्तु आदि वेदप्रतिपादित शास्त्रोंका सार्वजनिक स्थानों पर, विरोध कितना अधःपतन ! (पाखण्ड) ।

व्यासपीठकी एक मर्यादा होती है, व्यासपीठ धर्मशास्त्र के संरक्षण, संवर्धन एवं समर्थन के लिए हैं । परमात्माने जनसामान्यके कल्याणके लिए जो शब्दावतार लिया है, वही शास्त्र हैं । **अवतीर्णो जगन्नाथः शास्त्ररूपेण वै प्रभुः**(शाण्डिल्य स्मृ ४.११३), **श्रुतिस्मृति ममेवाज्ञ**. शास्त्र भगवान की आज्ञा है । पद्मपुराण - **वेदनिंदां प्रकुर्वन्ति ब्रह्मचारस्यकुत्सनम् । महापातकमेवापि ज्ञातव्यज्ञानपण्डितैः।। श्रुतिस्मृत्युक्तमाचारं यो न सेवते वैष्णव । स च पाखण्डमापन्नो रौरवे नरके वसेत् ।। वेदबाह्यव्रताचाराः श्रौतस्ममार्त्तबहिष्कृताः। पाखण्डिन इति ख्याता न सम्भाष्यद्विजातिभिः** - लिंगपुराण पूर्वार्द्ध । **श्रुतिस्मतिभ्यां विहितो धर्म्मो वर्णश्रमात्मकः** - लिंगपुराण, श्रुति-स्मृति-पुराण विहित कर्म(धर्म), सभी वर्णोमें भ्रम पैदा करता है और पतनगामी है । शास्त्र विरूद्धाचार या विधिहीन कर्म करनेवाले वक्ताओंके लिए पुराणों में पाखण्डी शब्दप्रयोग आता है, ऐसे सेंकडो प्रमाण पुराण-स्मृत्यादि में उपलब्ध है । ऐसे विधिविधान या शास्त्र की उपेक्षा करनवाले, स्वच्छन्दी वक्ताओं को धर्मद्रोही या धर्मद्वेषी कहे तो सर्वथा उचित ही है, वे सदैव त्याज्य एवं अधःपतित माने जाते है । ब्राह्मणोंका विरोध, कर्मकाण्डका विरोध, स्वच्छन्दतापूर्ण शास्त्रों का अर्थघटन इत्यादि बहुश्रुत वक्ताओंके लिए, एक गौरव एवं हल्की-सस्ती प्रतिष्ठाका मार्ग बन गया है । नित्य एक नया वक्ता आ जाता है ।

श्रुति भी कहती हैं - **शास्त्रज्ञोऽपि स्वातंत्रेण ब्रह्मज्ञानान्वेषणं न कुर्यात्** (मु.उप) वाक्सामर्थ्य होने का अर्थ ये नहीं है, आप कुछ भी बोले, कुछ भी आचरण करे और शास्त्र एवं बहुऋषिमत, विधि-विधानोंका उपहास करे। **शास्त्रपूर्वके प्रयोगे अभ्युदयः** यथा शास्त्रोक्त विधान से ही परम श्रेयस् - कल्याण होता है । **न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम् । जोषयेत्सर्व कर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्**, गी.३.२६। जनसामान्य की बुद्धि को भ्रष्ट करके, शास्त्र विरूद्धाचरण में, उन्हें प्रवृत्त नहीं करना चाहिए, यही गीता सिखाती है।

सूतपुराणी तो, महाज्ञानी एवं बुद्धिमान होनेके, उपरान्त शास्त्र मर्यादाको जानते है यथा, वे स्वयंका नहीं अपितु, सत्य वृत्तान्त बताते है।

नारदेनैवसम्पृष्टो भगवान्कमलापतिः। सुरर्षये यथैवाऽऽह तच्छृणुध्वं समाहिताः- सूतजी बोले हे! ऋषिगण, सूनिए, पूर्वकालमें ऐसा ही प्रश्न नारदजीने भगवान् कमलापति विष्णुको किया था और उन्होंने जो प्रत्युत्तर दिया था, वो आपको सूनाता हुं, आप समाहित मनसे सूनिए।

नारदजीको भी जान ले । कौन हैं नारद? प्रायः, आजकल कुछ लोग, उनका व्यंग चित्रण, उपेक्षायुक्त या उपहास करते है । चुटकुलोंमें इस नामका प्रयोग करते है। जब आप इस उदात्त चरित्रके विषयमें जानेंगे, तो कदापि ऐसी मूर्खता करनेका, दुःसाहस नहीं करोगे।

अष्टादश महापुराण या अन्य उपपुराणोंमें, रामायण महाभारतादि महाकाव्य-इतिहासोमे सर्वत्र नारदजी का उत्तम चरित्र व्याप्त है। नारदजी भक्तिमार्ग के आचार्य-प्रणेता है । नारदभक्ति, नारद पांचरात्र जैसे दिव्यग्रंथोके रचयेता है। सर्वकालमें सर्वक्षेत्र में वे सुप्रसिद्ध है।

नारं परमात्मविषयकं ज्ञानं ददातीति - देवर्षिविशेषः - उर्ज्जयोनिरुदापेक्षी नारदश्च महानृषिः। परमात्मा विषयक ज्ञान का प्रचार प्रस्तार, प्रायः सबसे अधिक नारदजीने ही किया है। वे किसी भी लोक में, जब मन आए, आवागमन कर सकते है । चाहे विष्णुलोक हो, ब्रह्मलोक हो, कैलास हो, पृथ्वीलोक हौ, पाताल लोक हो, कहीं भी वे सन्मानपूर्वक आवागमन

सकते है । दैव-गंधर्व-विद्याधर-दानव-मानव, कहीं भी वे जाएंगे तो, उनका प्रयोजन सर्वकल्याण का ही होता है ।

जो नारदजी पर व्यंग्य करते है, वे तो,महामूर्ख एवं पातकी है । नारदजी, तो आकाशगमन की सिद्धिवाले है, उनका कोई निजी स्वार्थ नही है, सबके कल्याणकी, करूणा रखे हुए, नारायण, नारायणका संकीर्तन करते हुए, पूरे ब्रह्माण्डमें विचरण करते रहते है । ऐसे महामुनि का उपहास करना घोर एवं अक्षम्य पाप है ।

नारदेनैवसम्पृष्टो जो प्रश्न शौनकादि ऋषियोंने सूतजीको किया, वही प्रश्न नारदजीने स्वयं नारायणको **सम्पृष्टो** सम्यक रीतसे पूछा था । नारदजी ब्रह्मलोक, कैलास, देवलाक, पातालादि स्थान पर जा सकते है, तो प्रश्न नारायणको क्यों पूछा**?**

भगवान् कमलापति: - कमलापति भगवान नारायण , कमला लक्ष्मीजीका नाम है, कमलापति । आजकल भगवान नामधारी अनेक जन्तु गूमते है - **भगवान् भंवृध्दिं गच्छतोत्यर्थात्भग: प्रकृतिरुच्यते** अथवा **ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशस: श्रियः ज्ञान वैराग्ययोश्चापि षण्णां भगः इतिरणा । उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिं, वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥ भूमिरापोऽनलोवायु खंमनोबुध्दिरेव च, अहंकारं इतियं मे भिन्नाप्रकृति अष्टधा -** गीता। अत:, जिनसे समग्र ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय होता है वह परमात्मा । जो समग्र ऐश्वर्य, ज्ञान, वैराग्य, यश, श्री, विद्या के स्वामी है और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाशादि पंच महाभूत, मन, बुध्दि, अहंकार जैसी अष्ट प्रकृति-भग के स्वामी को भगवान् कहते है । क्या भगवाननामधारी जंतु - स्वतः बने हुए, भगवानमें, क्या स्वतंत्ररूपेण बालुकी एक कण बनानेकी शक्ति है? नारदजीने, जिसे प्रश्न किया है, वे तो **कर्तुंमकर्तुमन्यथाकर्तुं** समर्थ भगवान कमलापति कमला-भगवति लक्ष्मीके स्वामि,समग्र ऐश्वर्य के स्वामि है ।

सुरर्षये यथैवाऽऽह तच्छ्रणुध्वं समाहिता: - देवर्षि, नारदजी का नारायणके साथ जो वार्तालाप हुआ है, आप समाहित मनसे सूनिए, श्रवण भी नवधा भक्तिका प्रथम प्रकार है । श्रवण की एक प्रक्रिया भी है । श्रद्धा एवं

शरणागति से श्रवण करना चाहिए । शरणागति का स्वरूप - **आनुकूल्यस्य संकल्प: प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् । रक्षिष्यतीति विश्वासो गोमृत्ववरणं तथा ॥** वक्ताकी अनुकूलता, प्रतिकूलताका त्याग, विश्वास, शरणागति, हमारा रक्षण अवश्य होगा ऐसा विश्वास, अपनी आत्माको (स्वको) प्रभु या गुरूको, समर्पण कर देना और अपने प्रति कृपायाचना करना, ये पांच बाते समाविष्ट है । प्रथम तो श्रवणमें श्रद्धा होना अत्यावश्यक है ।

अश्रद्धया हुतंदत्तं तपस्तप्तं कृतन्तुयत् । असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नेह च - गीता । **श्रत् ददातीति श्रद्धा । प्रत्ययो धर्म्म कार्य्येषु यथा श्रद्धेत्युदाहृता । नास्ति ह्यश्रद्दधानस्य धर्म्मकृत्ये प्रयोजनम्** ॥ श्रद्धा के बीना किए हए कर्म से कोई लाभ नहीं हैता । श्रद्धा क्या है - **निगमाचार्यवाक्येषु भक्तिःश्रद्धेति विश्रुता । चितैकाग्र्यन्तु सल्लक्ष्ये समाधानमिति स्मृतम् - श्रत् ददातीति श्रद्धा । प्रत्ययो धर्म्मकार्य्येषु यथा श्रद्धेत्युदाहृता । आत्मदर्शनफलमुद्दिश्य तत्साधनत्वेन श्रवणं विधीयते । श्रवणं नाम वेदान्तवाक्यानां ब्रह्मणितात्पर्यं विचारः। नास्ति ह्यश्रद्दधानस्य धर्म्मकृत्येप्रयोजनम् ॥** जो सत्यकी प्राप्ति करावे वो श्रद्धा । गुरू-आचार्य वचन, शास्त्रवचन पर विश्वास रखनेको कहते है - श्रद्धा । डॉक्टरने बताया की तेल-मिरची नहीं खाना, यह दवा तीन बार लेना, रातको जल्दीसे सोना, इसका प्रयोजन समझमें आए या न आए, इनकी बात मानना श्रद्धा है, तभी तो स्वास्थ्य लाभ होता है । हम नहीं पूछते कि, इस दवामें क्या-क्या(कन्टेन्ट) है, इस का क्या कार्य है, कैसी असर होगी, इमली-तीखा खाना क्यों बंद कराया, पीठ के दर्दमें जल्दी शयन करनेका, क्या कारण हो सकता है, इत्यादि । यही है वैद्य एवं औषध परका विश्वास ।

शरणागति पूर्णरूपसे होनी चाहिए । अपनी मन, बुध्दि, चित्त, अहंकार सहित समग्र इन्द्रियोंको ईश्वर-गुरू में लगाने से ही, यह उत्तम तत्वज्ञान पा सकते हैं । अपने घर में कोई महात्मा सत्संग कर रहे है, और एक तरफ टी.वी., टेप चलता हो, एक तरफ टेलिफोन की घंटी बजती हो, तब क्या आप वह सत्संग सुन पायेंगे ? इसी तरह यहां भी, सभी इन्द्रियोंके सम्बंध, अन्य जगह से हटाकर, सत्संग में लगाना चाहिए । पूर्णतः समर्पित होना

अत्यावश्यक है । यथा, समाहित होकर श्रवण करनेकी बात श्रीसूतजी कहते हैं । कहीं ऐसा न हो कि रामायण पूरी होनेके बाद आपको शंका रहे, कि सीताका हरण तो हुआ, लेकिन वापस हरण की सीता हुई या नहीं ।

किसी भी कार्यारम्भमें, श्रद्धाका अति महत्त्व रहता है । कथा सूनी, पांच अध्याय पूरे हुए, प्रसाद लिया, घर आए गए । ये यथार्थ श्रवण नहीं है । जो श्रवण किया है, वह कामका है या ऐसे ही समय घवाया **?** मात्र नामका ही श्रवण करना बुद्धिमानी नहीं, मूर्खता है । श्रवणके पश्चात् की जो प्रक्रिया है, उसका महत्त्व ज्यादा है । उससे ही निश्रेयस(कल्याण) सिद्ध होता है । सत्यनारायण की कथा तो, प्रायः सबको कंठस्थ है, क्या लाभ हुआ, इससे तो संशय उत्पन्न हुआ । भागवतमाहात्म्य में धूंधुकारी सहित कई श्रोता थे, किन्तु मुक्ति तो धूंधुकारी को ही मिली ।

नवधा भक्ति में **श्रवण** को प्रथम प्रकार की भक्ति माना है । व्यवहार में भी हम, टी.वी., रेडियो में विज्ञापन सुनकर ही साबुन, कपडे, स्कूटर, फ्रिज आदि खरीदते है, यह श्रवणका ही तो प्रभाव हैं । श्रवण से श्रध्दा-विश्वास बढता है । अपना मन एक मान्यता को स्वीकृति देता है । श्रध्दा से भक्ति दृढ होती है । दुःश्रवण से मनोवृत्ति क्लुषित होती है । सत्संग से आत्मशक्ति का विकास होता है । यथा कहा है **श्रुण्वतः स्वकथां कृष्णः पुण्य श्रवण कीर्तनः, हृद्यन्तस्थोह्यभद्राणि विधुनोति सहृत्सताम् । द्रूतस्य भगवद्धर्मा धारावाहिकतांगतः, परेशेमनसोवृत्ति भक्तिरित्याभिधीयते ॥ प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेंन स्वानां भावसरोरूहम्, धुनोति रामलं कृष्ण सलिलस्य यथासरत्॥** भगवत्कथा एवं सत्संग से हृदय के विकार दूर हो जाते हैं और हृदय ईश्वर प्रेम से भर जाता है । भगवत्भाव से हृदय द्रवित हो जाने से विकार बह जाते है । जिस प्रकार शरदऋतु के आगमन से जल विकार दूर हो जाते है, वैसे ही कर्ण द्वारा हरिकथा श्रवण होने से हृदय शुध्द हो जाता है और उसीके अनुसार हमारा मनोव्यापार चलता हैं । आगे बता चूके है कि, कथा श्रवण भी व्रतका एक अंग है । व्रतका आशय अन्तःकरणको शुद्ध करनेका है, जो कथा श्रवणसे सहजतासे होता है ।

गीतामें श्रद्धाको सविस्तर समझाया है । **श्रद्धा देवानधिवसतेश्रद्धा विश्वमिदं जगम् । श्रद्धया देवो देवत्वमश्नुते । श्रद्धा प्रतिष्ठा लोकस्य दैवी । सा नो जुषाणोप यज्ञ भागात् । कामवत्साऽमृतं दुहाना** -तै-ब्रा.३.१२.३॥ श्रद्धामें देवों का निवास है, श्रद्धा सर्वका आश्रय है, उन्नति का आश्रय है । हमें अमृतपान करानेवाली कामधेनु है । सप्तशतिमें कहा - **या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता** कहा है । सबके हृदयमें जो श्रद्धाका स्वरूप लेकर, सबका कल्याण करने बैठी है, उसे कहते है, श्रद्धामाता, जगदम्बा का कारूण्यस्वरूप ।

शास्त्रोमें, कई स्थान पर वर्णन आता है कि, जो गंगामें स्नान करते है उनके पाप निर्मूल होजाते है, वे निष्पाप हो जाते है । **श्रद्धाका सवाल है पुरावों की जरूरत नहीं, यूं तो पूरे कुरानमें खुदा के दस्तखत नहीं ।** श्रद्धा होनी चाहिए, कोर्टमें गवाही के पूर्व जिस गीता या कुरान पर हाथ रखकर सोगंद लेते है, उसमें कहीं भी भगवान श्री कृष्ण के या खुदा के हस्ताक्षर नहीं है ।

एक बार माता पार्वतीने शिवसे कहां, आप तो बिलकुल भोले हो, आपने ऐसा वरदान क्यों दिया कि जो गंगामें स्नान करेगा, उसका कैलासमें निवास होगा । कुछ ही दिवसों में कैलास भर जाएगा । शिवजीने कहा देवी धैर्य रखो । ऐसा कदापि नहीं होगा । **निगमाचार्यवाक्येषु भक्तिःश्रद्धेति विश्रुता** इसपर विश्वास जिसको होगा, वो ही फल पाएगा । एक योजनान्तर्गत, एक समय शिवजी गंगाकिनारे समाधि लगाकर बैठ गए, मां पार्वती उनकी सेविका बनकर, गंगास्नान करने आने-जानेवालोसे प्रार्थना करने लगी, सूनो सज्जनों.., मेरे गुरूदेवको समाधि लग गई है, कब खूलेगी पता नहीं । कोई इनके मस्तिष्कपर एक कलश पानी चढाएगा तो वे समाधि से बहार आएंगे । किन्तु, समस्या एक यह है कि जल चढानेवाला निष्पाप होना चाहिए, अन्यथा गुरूजी के नेत्र खुलते ही वह भस्म हो जाएगा । शर्त सूनकर कोई साहस करनेको तैयार नहीं हुआ । सूर्योदयसे सूर्यास्त हो गया। अन्त में एक ब्राह्मण, सायं संध्योपासना के लिए वहां आया, माताजीने उसे भी पूर्ववत् कहा । ब्राह्मणने कहा माता मैने भी पाप तो किए है, किन्तु मुझे शास्त्रपर श्रद्धा है. आप प्रतिक्षा करिए,

मैं स्नान एवं संध्यावंदन करके आता हुं क्योकि स्नान से तो मै निष्पाप हो ही जाउंगा, और संध्यावंदन से कृतकृत्य भी हो जाउंगा । वहीं शिवजी प्रकट हुए और नेत्र खोलकर बोले, देवी देखा । प्रातःकाल से सायं काल पर्यन्त, सहस्रों लोगोनें स्नान किया, लेकिन श्रद्धायुक्त स्नान मात्र यह विप्रवरने ही किया है । यह एक मात्र कैलास निवासका अधिकारी है ।

श्रद्धायुक्त श्रवणके उपरान्त, श्रवण पर मनन-चिन्तन भी करना पडता है । एक ही वर्गमें, पचास विद्यार्थी होते है, एक ही अभ्यासक्रम होता है, एक ही शिक्षक है, एक ही स्थान है, एक जैसी किताबें है, तथापि, प्रथम श्रेणीमें तो एक ही उत्तिर्ण होता है । तो कथा कैसे श्रवण करनी चाहिए - **श्रोतव्यः स्मर्तव्यः,** भाग. द्वि.स्कं । **आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनःपुनः। इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणो हरिः,** स्क.पु.। प्रथम निश्चय कर ले, जो श्रवण किया है, वह मात्र वार्ता नहीं है, व्यास, नारद, सूत, शौनकादि जैसे, प्रतिभा सम्पन्न महानुभावों का दर्शन आगे करा चूके हैं । इनके पास व्यर्थका समय नहीं था । इस कथाका प्रादुर्भाव, इनके द्वारा हुआ है । यथा जो कथा है, वह कोई, सामान्य वार्ता नहीं है, इस निश्चयसे आगे प्रयाण करें । बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है – **श्रवणं तु गुरोःपूर्वं मननंतदनन्तरम् । निदिध्यासनमित्येतत्पूर्णबोधस्य कारणम् ॥** गीतामें भी कहा है - **तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया । उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः** ॥ श्रवण से प्रेम-भक्ति क्रमशः सम्पन्न होती है । जो श्रवण किया है, उसका चिन्तन करेँ, अन्य पु राणोपनिषदादि में इनकी संगति एवं संदर्भ ढूंढे (जैसे यह एक सनम्र प्रयास है), फिर उसका मनन करें, इसे मनमें स्थिर करें । अब जो मनमें स्थिर हो गया, उसका ध्यान करें (निदिध्यासन), इसे कहते है श्रवण प्रणाली-पद्धति ।

प्रणाली का अनुसरण तो सब में करना पडता है, रोटी बननाने से पूर्ण गेहूं साफ करने पटते है, उसका लोट तैयार करना पडता, बूनना पडता है, सेकना पडता है, यही तो है विधि । वार्तिककार भगवान् श्रीआचार्य सुरेश्वर कहते हैं, **निदिध्यासस्वेति शब्दात्सर्व त्याग फलं जगौ । न ह्यन्यचिन्तामत्यक्त्वा निधिध्यासितुमर्हति** ॥ वाचस्पति मिश्र तत्त्वज्ञानके पाँच चरण हैं **सुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा । ऊहापोहार्थ विज्ञानं**

तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः ॥ अर्थात् सुश्रुषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, **ऊहापोह** अर्थात् तर्क , अर्थविज्ञान व तत्त्वज्ञान ज्ञान प्राप्ति के प्रमुख साधन है ।

श्रद्धायुक्त श्रवणसे प्रारम्भ करके, प्रभुप्राप्ति पर्यन्तका क्रम है - **प्रथमं श्रद्धा ततो रतिस्ततो भक्तिरनुक्रमिष्यति क्रमेण भविष्यतीत्यर्थः ॥ तज्जोषणा-दाश्वपवर्गवर्त्मनि श्रद्धारतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति॥ अस्य पूर्वत्र श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति**, भाग. ३.२५.२५। श्रद्धासे सत्यकी प्राप्तिके क्रम में रति- प्रेम, भक्ति, परमात्मा से जुडने की तीव्र इच्छा प्रगट होती है, अन्ततोगत्वा, यथेच्छ सिद्धि प्राप्त होती है । सूतजी बोले - यह नारद एवं नारायण का संवाद है, और जैसा मैने सूना है आपको सूनाता हुं । आप समाहित मनसे श्रवण करें ।

एकदा नारदो योगी परानुग्रहकाङ्क्षया।
पर्यटन् विविधान् लोकान् मर्त्य लोकमुपागत:॥४॥

एकदा, अचोद्यमानानियथा पुष्पाणिचफलानि च। स्वकांलनातिवर्तन्ते तथा कर्मपुराकृतम्, म.भा.॥ परिपक्व कालमें फलफूल खिलते हैं, वैसे ही पुण्यप्रकोप होनेपर सत्संग प्राप्ति होती हैं । विवाह, पुत्रप्राप्ति आदि भी नित्य नहीं होते, जिस दीन होते है, वह आनन्दका दिवस होता हैं, पुण्यकाल होता हैं । संत समागम भी ऐसे पुण्योदय से होता हैं । मृत्युलोक के मानवीओंका कल्याण हेतु, स्वयं महायोगी नारदजी पृथ्वी पर पधारे है ।

नारदोयोगी परानुग्रहकाङ्क्षया, वैसे तो नारदजी सब शास्त्रों के ज्ञाता है, विशेषरूप से भक्तिमार्ग के आचार्य है, यद्यपि यहां संबोदन किया है, नारदोयोगी । योग का अर्थ होता है जोडना (३+५ का योग ८ है)। यथा जो जीवको, शिवसे युक्त करता है, वही नारद । गीतामें तो भक्ति को योग कहा है, यथा नारदजी भी योगी है । इस कथामें भी सबपर अनुग्रह की भावनासे-कारूण्यपूर्ण हृदयसे, अनेक लोकोंमें घूमते-घूमते, वे पृथ्वीलोक पर आए । वे संत है - **ब्राह्मणा: श्रुतिशब्दाश्च देवानां व्यक्तमूर्तय:। सम्पूज्या ब्रह्मणा ह्येतास्तेन सन्तः प्रचक्षते॥** ब्राह्मण ग्रंथ और वेदोंके शब्द, ये देवताओंकी निर्देशिका मूर्तियां हैं। जिनके अंतःकरण में इनके और ब्रह्म का संयोग बना रहता है, वह सन्त कहलाते हैं । श्रीमद्भादवतानुसार **तितिक्षवः**

कारुणिकाःसुहृदःसर्वदेहिनाम्।अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः॥ जो लोग सहनशीन, दयालु, समस्त देहधारियों के अकारण हितू, किसी के प्रति भी शत्रुभाव न रखने वाले, शान्त, सरल स्वभाव और सत्पुरुषों का सम्मान करनेवाले होते हैं वे साधुपुरूष है । **न एते साधवः साध्वि सर्वसंगविवर्जिताः।संगस्तेष्वथ ते प्रार्थ्यः संगदोषहरा हि ते॥** ऐसे-ऐसे सर्वसंगपरित्यागी महापुरुष ही साधु होते हैं, तुम्हें उन्हीं के संग की इच्छा करनी चाहिये। क्योंकि वे आसक्ति से उत्पन्न सभी दोषों को हर लेने वाले हैं । **विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्र विशुद्धिकृत्। द्रष्टांन्कुशलो धीरो वक्ता कार्योऽतिनिःस्पृहः** प.पु.भा.म.२०॥ जो विरक्त हो, शास्त्रज्ञ हो, दृष्टान्तकुशळ हो, निःस्वार्थी हो । जिनका समागम मात्र ही कल्याणकारी हो वे संत कहलाते है **- संत परम हितकारी**, **जगत माहि संत परम हितकारी । प्रभुपद प्रगट करावे प्रीती**, **भरम मिटावे भारी । परम कृपालु सकल जीवन पर**, **हरिसम सकदुःख हारी ।** अन्तःकरण में परमात्मा के प्रति स्नेह प्रकटावे और जो मन के भ्रम मिटावे वो ही सच्चे संत है ।

दुर्भाग्यवश कुछ मुर्ख वक्ता, यज्ञ-कर्मकाण्डादि का विरोध करते है, जबकि, **कर्मकाण्ड पूर्णतया शास्त्रोक्त है, वेदप्रतिपादित** है, **तच्छांतिरौषधैर्दीपै र्जप होमार्चनादिभि: -** सर्वोत्कर्षके लिए ऋषियोंने कर्मकाण्ड बताया है । **उसका विरोध करनेवाले निश्चितरूप से पाखण्डी ही है**, योग में भी इसका अनुसंधान मिलता है । **श्री धनेश्वर महाराज** के सत्संग में (गत अधिकमासमें) मैने सूना था कि, अभी सनातन वैदिक धर्म में २२०० संप्रदाय है । भगवान श्री कृष्णने, गीता में अर्जून को, अढारः(१८) योगो का ज्ञान दिया, फिरभी कोई अपना नया संप्रदाय नहीं बनाया । उन्होनें अर्जूनको अंतिम अध्यायमें कह दिया कि, **इति मे ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया । विमृशयैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरू** । मैं कई स्थानो पर लिखता हुं, **भविष्यमें भारतको, जितना भय आतंकवादसे नहीं है, इससे कई ज्यादा भय, ऐसे कट्टरवादी पाखण्डीयोंसे है, भले भोले लोगों को लूंट रहे है ।**

हमारी दिव्य वैदिक संस्कृतिको खण्ड-खण्ड विभक्त करके, स्वयंके संप्रदाय को ही सर्वोच्च बतानेका दुराग्रह रखना पाखण्ड है । अपना संप्रदाय, अपनी

थियरी, अपना मंत्र, अपनी ही कंठी सदैव सत्य, बाकी सब मिथ्या । वे लोग सर्वोपरि ब्रह्मा-विष्णु-महेश-दुर्गादि वैदिक देवताओंसे भी अपने संप्रदायोक्त देवताओं को बडा मानते है । वेदप्रतिपादित कर्मकाण्ड की परंपरा, गृह्यसूत्रो से विपरित, अपने मनमाने ढंग से यज्ञोपवित, विवाह कराना शास्त्रका ही नही, परमात्मा ऋषियों का अनादर है, घोर अपराध है । इतना ही नहीं ऐसे परमात्माओको नीचा दिखाते है, वैदिकविग्रहको गौण बताते है । संतश्री तुलसीजीने यथार्थ वर्णन किया है **- कलिमल ग्रसे धर्मसब लुप्त भए सदग्रंथ। दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ॥ भए लोग सब मोहबस लोभ ग्रसे सुभ कर्म। सुनु हरिजान ग्यान निधि कहउँ कछुक कलिधर्म॥ बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी। द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥ मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा॥ मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई॥** कलियुग के पापों ने सब धर्मों को ग्रस लिया, सद्ग्रंथ लुप्त हो गए, दम्भियों ने अपनी बुद्धि से कल्पना कर-करके बहुत से पंथ प्रकट कर दिए । सभी लोग मोह के वश हो गए, शुभ कर्मों को लोभ ने हड़प लिया। हे ज्ञान के भंडार! हे श्री हरि के वाहन! सुनिए, अब मैं कलि के कुछ धर्म कहता हूँ । कलियुग में न वर्णधर्म रहता है, न चारों आश्रम रहते हैं। सब पुरुष-स्त्री वेद के विरोध में लगे रहेंगे । ब्राह्मण वेदोंको बेचनेवाले और वेदकी आज्ञा नहीं मानेंगे । जिसको जो अच्छा लगेगा, वही मार्ग और जो दंभी को सब कोई संत कहेंगे हैं । विषयान्तर आवश्यक था, पुनः कथा पर आगे बढते है ।

हम तो, देवर्षि नारदजी की बात कर रहे है। **गंगापापं**, **शशीतापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा । पापंतापं तथा दैन्यं हन्ति सज्जनसंगम॥** सत्संग की, महिमा बताते हुए कहा गया है, कि गंगास्नान से सब पाप, चन्द्रमा के दर्शन से ताप (गर्मी) एवं कल्पवृक्ष का दर्शन दरिद्रता को दूर कर देता है। परन्तु सज्जनों की संगति से पाप, ताप और दरिद्रता तीनों से दूर हो जाते हैं । संत तो परम हितकारी होते है । **परानुग्रह कांक्षया** सबके उपर अनुग्रहका विचार करते-करते वे पृथ्वीपर आए । कल्याण किसका करना है **?** जो पर है - परमात्मासे पर है, ईश्वरसे विभक्त (दूर) है । जो परमात्मासे जुडे हुए है, जो भक्त है, उन्हे तो दुःख की छाया तक स्पर्श नहीं कर सकती । जैसे

सूर्यको अन्धकार का स्पर्श नहीं हो सकता, इस प्रकार, जो परमात्मासे जुडा है, उसे दुःख कैसा**?** जो सच्चिदानंद स्वरुपकी मस्तीमें मस्त है, उसे दुःख कैसा ? नारदजी तो, जो ईश्वरसे विमुख है, उन्हे ईश्वरसे जोडने आए है । एक क्षणके लिए भी परमात्माकी-परमानन्द स्वरूपकी अनुभूति हो जाय, तो मानवजन्म सफल हैं, क्योंकि **स्नातं तेन समस्ततीर्थ सलिले सर्वापि दत्ताऽवनि यज्ञानां च कृतं सहस्त्रमखिला देवाश्चसंपूजिताः। संसाराच्च समुद्धृताः स्व पितरस्त्रैलोक्य पूज्योऽप्यसौ यस्य ब्रह्मविचारणेक्षणमपि स्थैर्यं मनः प्राप्नुयात्** ॥ ईश्वरसे किसी भी प्रकारसे या कामना से भी, यदि मन लग जाए तो श्रेयष्कर ही हैं, चोकलेट के प्रलोभन से भी यदि बालक दवा लेता है तो स्वास्थ्य लाभ तो होगा ही । **अग्निसंगाद्यथा लोहमग्नित्वमुपगच्छति** अग्निका अनायस स्पर्श हो जाए, तब भी जलन होती है, परमान्दस्वरूपमें एक बार भी मन लग जाए तो, धन्य हैं । उनके गुणोंका स्मरण मात्र से ही पापक्षय होते है । जिस प्रकार अत्तर बेचनेवाले से, आप अत्तर खरीदें या ना खरीदें, उसकी दुकानपर कुछ समय बैठने मात्र से सुगंध आपके शरीर से आने लगती है । पुष्पको जिस कपडे से ढका है, वह कपडा भी सुवासित हो जाता है । संसर्गका असर अवश्य होता है, कोविद१९ इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है ।

मर्त्यलोकमुपागत: - पृथ्वी को मृत्युलोक क्यों कहा**? मरणं यत्र सर्वेषां तत्रासौ परिजीवति । यत्र जीवन्ति मूढास्तु तत्रासौ मृत एव वै ॥ यदल्पं तन्मर्त्यं** छा.७.२४.१ यहां सब क्षणिक है और लोग भौतिक व दृश्य पदार्थ को ही सत्य मानते है, मूढलोगों का निवास है । यहां अनात्मवादी लोग बसते है, जो देहाध्यास में ही रत है । ज्ञानी है वह मृत्युलोकमें होते हूए भी दिव्यलोक में रहते है । शरीरको, जो नाशवान् है, इसको ही अविनाशी आत्मा माननेवाले लोग है । भौतिक पदार्थ सदैव नश्वर है, यथा जो जाता हैं उसका दुःख तो रहेगा ही । यहा पंचभौतिक शरीरको ही लोग आत्मा मानते है, भौतिक पदार्थमें ही सुख ढुंढते है । इससे क्वचित् क्षणिक सुख मिल भी जाता है, तो बहुत दुःख लेकर आता है । भौतिक पदार्थ या पंचभौतिक शरीरके नाशको स्वयंकी मृत्यु मानते है । इसलिए इसे मृत्यलोक कहा है । किसीने श्रीरमण महर्षिको पूछा था कि यदि शरीरके

दुःखसे आत्मा निर्लेप है तो, हाथ कट जानेपर पीडा क्यों होती ? तब महर्षिने बताया कि, उसे नींद की गोली दे दो, उसका हाथ कटा हुआ होते हुए भी, उसे दुःख का अनुभव नहीं होगा और नींद आ जाएगी । यहां लोग बहिर्मुख है, भौतिकवादी है (ENTROVERSE & MATERIALISTIC) इसलिए ही परेशान है । सुख और आनन्द में भेद है । सुख भौतिक पदार्थो में है, लेकिन आनन्द आत्माश्रित है । इसीलिए जिसके पास बंगला, गाडी, बाग, नौकर-चाकर, सुन्दर पत्नी, संतानादि है, वे सुखी होंगे (भौतिकरूप से), लेकिन जरूरी नहीं कि, वे आनन्दित या शांत या समाहित मनवाले भी हो । यहां सबको मानसिक परिताप, चिन्ता है ।

तत्र दृष्ट्वा जनान्सर्वान् नाना क्लेशसमन्वितान्। नाना योनिसमुत्पन्नान्क्लिश्यमानान्स्वकर्मभिः॥ ५॥

तत्र दृष्ट्वा जनान्सर्वान्नाना क्लेशसमन्वितान्। नारदजी मृत्युलोक पर आकर अनेक प्रकार के क्लेश से पीडित लोगों को देखते है । क्लेश नाना प्रकार के है, योगमें इसे पांच प्रकारोंमें विभक्त किया है - **अविद्याऽस्मिता रागद्वेषभिनिवेशाः पंच क्लेशाः**, योग-२.३। योगशास्त्र में मनुष्य के पांच क्लेश बताये गये हैं। ये हैं- अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश । किसी भी जीच का यथावत् ज्ञान न होने को अविद्या कहा जाता है। सब कोई मानसिक परिताप से पीडित है । यहां नश्वरमें शाश्वत सुख देखनेवाले लोग है, उनके लिए परमात्मा भी भौतिक सुख का साधन मात्र है ।

यह मृत्युलोग है, यहां हर व्यक्ति प्रतिदिन मरता है । दृश्य प्रपञ्चमें ही बुद्धिवाले दृश्यके साथ-साथ प्रतिदिन क्षीण होता है । कोई धनके लिए मरता है, कोई पुत्रके लिए मरता है, कोई प्रतिष्ठाके लिए मरता है और इसके लिए ही अपने जीवन की, अपने आदर्शो की, अपनी भावनाओं की बलि चढाता है । कोई बच्चे में सुख देखता है, तो कोई पैसे में ।

एक आदमी, एक संतके पास जाकर, अपने दारिद्रय दूर करनेके लिए, प्रार्थना करता है । संत उसे बहुत समझाते है, यद्यपि, वह एक श्रेष्ठी के वैभव से खूब आकर्षित था इसलिए श्रेष्ठी बननेका वरदान चाहता है । संत

उसे एक चिंतामणी देते है । चिंतामणी के सहयोग से वह खुब वैभव प्राप्त करता है और मन ही मन सुखी होता है। एकदिन, वह किसी नव-परणीत युगल को देखता है तो, वह कामज्वर से पीडित होकर, स्त्रीसुख की कामना करता है । चिंतामणी से वह सुंदर युवती से विवाह कर लेता है और स्वयंको खुब सुखी मानता है । लम्बे वैवाहिक जीवन के बाद भी उसे संतान न होने से वह पुन: पुत्रेष्णा होती है, और पुत्र न होनेसे दु:खी होता है । उसे पुत्र भी प्राप्त होता है और अब वह स्वयंको सर्व श्रेष्ठ सुखी मानता है । एक दीन, वह अपने परिवारके साथ राजाकी, सवारी देखने जाता है। उसका बच्चा सुंदर हाथी-घोडे देखकर सवारी में बीच में दौड जाता है । राजाके सिपाही उसका बहुत अपमान करते हुए अपने बच्चे को संभालनेकी सलाह देते है । वह खूब दु:खी होता है और राजा होने में ही सारे ब्रह्माण्डके सुख है, ऐसा मानकर चिंतामणी के सहयोग से राजा बन जाता है । स्वर्ग सा भी सुंदर राजमहल बनाता है । अनेक सेवक उसकी सेवा में सर्वकाल, उपस्थित होते है । अब वह, स्वयंको खूब भाग्यवान् मानता है । कुछ काल पश्चात्, एक दुश्मन राजा, उससे युध्ध करता है, उसे हराता है । उसका पुत्र भी युध्धमें मारा जाता है । उसकी सुंदर पत्नी को वह विजयी राजा अपनी रानी बना देता है और उसे स्वयं की रक्षाके लिए भागकर जंगल में जाना पडता है । वह खुब परितप्त और क्षुधा-तृषा से व्याकुल होकर, एक मंदिर के प्रांगण में आता है । यहां उसे वो ही संत मिलते है, जिन्होंने उसे दिव्य चिंतामणी दिया था । संतके श्री चरणोंमें प्रणाम करके, वह अपनी कथा सुनाता है । तब संत उसे समझाते हुए कहते है कि, तेरी सुख की खोज ही गलत थी, वैभव पानेसे सुखी होने की तेरी ईच्छा थी, तब तुझे वैभव भी मिला । वैभव पाकर तुझे स्त्री कामना हुई, तुझे स्त्री मिली फिरभी तु पुत्रेष्णा से दु:खी होने लगा । उसके बाद तुझे लोकेष्णा हुई, तु राजा बना । तेरे सुख के ईच्छित फल पाकर भी तू ज्यादा समय सुखी नहीं रह सका है । तु ने स्त्रीमें सुख देखा, लेकिन स्त्री प्राप्ती के बाद भी तु दु:खी रहा । तुझ पुत्रेष्णा हुई । पुत्रमें सुख देखा, लेकिन पुत्र प्राप्ती के बाद भी तू दु:खी रहा । भौतिक पदार्थो में कभी सुख नहीं होता और सुख कहीं बहार से भी नहीं आता, वह तो अन्तर्गत है, आत्माके भीतर ही सुखका साम्राज्य है, जैसे मृग की नाभी में कस्तुरी । तथापि, यहां कोई औरत के लिए रोता

है, कोई धन के लिए रोता है, कोई ईज्जत के लिए रोता है, तो कोई घर के लिए रोता है । लेकिन इनके लिए कभी न कभी तो रोना निश्चित ही है । कोई परमात्माके लिए नहीं रोता, एक बार भी यदि कोई परमात्मा के लिए रोए तब पता चलेगा कि रोना भी, कितना सुखद होता है । एक बार भी यदि ईश्वर प्रेममें आंसू आए, वो कभी भौतिक सुख नहीं चाहेगा । वह तो आंसुओं की गंगा-यमुनामें बह जाना ही पसंद करेगा, परमात्माके लिए बहा आंसु भी अमृत है, आनन्ददायक है, जैसे अर्जूनका विषादयोग है।

जनान्सर्वान् - जैसे आगे बताया, यहां सभी लोग दु:खी है, क्योकि, यहां सब लोग नश्वर में शाश्वत आनन्द ढूंढते है । परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप होते हुए भी, यहां सभी परमात्मा से पर है, फिर आनन्द कहांसे पाएंगे **?** यह मृत्युलोक है, यहां भूतसंध को, देह को ही (**मै**) आत्मा माननेवाले भूत रहते हैं । भूत कोई जातिका नाम नहीं हैं । जिनका मन पञ्चभौतिक देह को सुखी करनें में, ही लगा है, वें भूत हैं और ऐसे लोग जहां रहते है, वह भूतयोनी हैं और वहां कौन सुखी हो सकता हैं **?**

नानाक्लेश समन्वितान् सबका दु:ख भिन्न-भिन्न प्रकारका है । दुःख कई प्रकारके है, यद्यपि सांख्यशास्त्र में उसे तीनभागोमें (आधिदैविक-दैविक, आधिभौतिक-भौतिक-सांसारिक, आध्यात्मिक-दैहिक) वर्गीकृत किया है,जो तीन कर्म संचित कर्म, प्रारब्ध कर्म और क्रियमण कर्म कर्माधीन है ।

कोई धन होनेसे दु:खी है, कोई धन न होनेसे दु:खी है, कोई पुत्र होनेसे दु:खी है, कोई पुत्र न होनेसे दु:खी है, कोई परिवार होनेसे दु:खी है, कोई मित्र न होनेसे दु:खी है, कोई प्रवृत्ति होनेसे दु:खी है, तो कोई निवृत्ति होनेसे दु:खी है । वैसे सबके दु:ख भिन्न भिन्न है, यद्यपि दु:खी तो सब है । एक ही वस्तु में कभी किसी को दुःख है, तो किसीको सुख । आकाश में घनघोर बादल देखकर किसानको आनन्द होता हैं, तो कुम्भार या नमक के आगारवाले रोते हैं । सबके दुःखका, मापदंड या परिमाण अपना-अपना हैं, इसलिए इसमें अगलपन-नानात्व हैं ।

नाना योनिसमुत्पन्नान्क्लिश्यमानान्स्वकर्मभि: - तीसरे एवं चौथे पद में बताया है कि दु:ख आते कहां से है, **दुःखों का देश कौन-सा है** । सूर्यसे

कभी अन्धकार नहीं आता । ये पूर्वजन्मकृत, अनेक योनियों के (भोक्तव्य) अभुक्त कर्मोका फल है । लोग दु:ख से परितप्त होकर भगवानके उपर दोषारोपण करते है । लोग कहते है कि - तेरी दुनिया में न्याय नहीं है । जहाँ कोई भोगनेवाला नहीं वहाँ भोग के भण्डार है । जहाँ खानेको अन्न नहीं वहाँ खानेवालों की कतारें है। कर्मके सिध्धांत को अगर देखे तो, इसका समाधान मिल जाएगा । ईश्वर की अहैतुकी कृपा पर संशय न करें क्योंकि, जो कुछ हम भोग रहे हैं, वह अपने पूर्वके संचित कर्म या प्रारब्ध ही है । ये दुःख कहां से आते है और क्यों आते है, इनका आयतन कहां है इत्यादि पर सविस्तार विचार करें, प्रायः इस कथा का उद्देश्य सत्यानुभूति एवं दुःख निवृत्ति ही है।

दुःख भी अपने ही कर्मो का परिणाम है, जो अब परिणत हो रहा है । तत्त्वसन्दोह में कहा गया है- **सचराचरजगतो बीजं निखिलस्य निज निलीनस्य**। बीजमें पूरा जीवका जीवन है । बीज में वृक्ष होना आविर्भाव है और वृक्ष का बीज में सिमट जाना तिरोभाव है। गीता में इसकी संगति है **- प्रभव: प्रलयस्थानं निधानं बीजमव्ययम् । यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन। बीजंमा सर्वभूतानां विद्धि पार्थसनातनम्** । म.शा.(२१३.१५) **- यथाश्वत्थ कणीकायामन्तर्भूतो महाद्रुमः। निष्पन्नो दृयते व्यक्तमव्यक्तात् संभवस्तथा।** कर्म-वासनाका जो बीज है, वो अति सूक्ष्म होते हुए भी पीप्पल के सूक्ष्ममें जैसे सूक्ष्म वृक्ष है । थड है, शाखाए है, पर्ण है, फल है, वैसे ही, प्राणियों की उत्पत्ति का बीज कर्म है और वह कर्म ही इंद्रियों की उत्पत्ति का भी कारण है- **कर्णणाबीजभूतेन चोद्यते यद्यदिन्द्रियम्। जायते तदहंकाराद् रागययुक्तेन चेतसा।** अर्थात् बीजभूत कर्म से जिस-जिस इंद्रिय को उत्पत्ति के लिए प्रेरणा प्राप्त होती है, राग युक्त चित्त से वही-वही इंद्रिय प्रकट हो जाती है । भिन्नभिन्न दुःखो का कारण गुण-कर्मका बीजरूप संस्कार या कर्मफलाश्रय है। आगे श्लोक २० में **- आयुःकर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च । पञ्चैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः॥ सुनुहु भरत भावीप्रबल बलख कहेउ मुनिनाथ। हानिलाभजीवनमरन जसु अपजसु बिधिहाथ** (रा.च) श्रुति भी कहती है **- योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिन:, स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथा कर्म यथा श्रुतम्** (कठ.२.७) मनुष्य अपने कर्मो के अनुसार मरणांतर पुन: जन्म प्राप्त करता है । संचित कर्मो के

अनुरुप योनि व भोगायतन शरीर प्राप्त होता है । **तद्य इह रमणीयचरणा अभ्यासो ह यत्ते रमणीयां योनिंमापद्येरन्। ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्यासो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा -** छा.उप.५.१०.७ । अच्छे कर्म करनेवाला अच्छी योनि में जन्म लेता है, अधम कर्म करनेवाला, अधम योनि में जन्म लेता है । पाशवीवृत्तिवाला पशूयोनि मे जन्म लेता है । **यादृशं तु वपत्येव तादृशं फलमश्नुते** जैसी करनी वैसी ही भरनी । **आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि । धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेशा यो वाचमनुदितां चिकेत**-अथर्व. ५.१.१२ अर्थात, जो मनुष्य पूर्व-जन्म में धर्माचरण करता है उस धर्माचरण के फल से अनेक उत्तम शरीरों को धारण करता है। अधर्मात्मा मनुष्य नीच शरीरों को प्राप्त होता है ।**असुनीते पुनरस्मासु चक्षुःपुनःप्राणमिह नो धेहिभोगम् । ज्योक्पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृडया नः स्वस्ति** - ऋग्.१०.५६.६॥ पूर्वजन्म के पाप-पुण्यों के बिना उत्तम, मध्यम और नीच शरीर तथा बुद्धि आदि पदार्थ कभी नहीं मिल सकते। **सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोग: - ते ह्लादपरितापफला: पुण्यापुण्यहेतुत्वात् पा.योग २.१३-१४,** जन्म, जाति, आयु इत्यादि का आधार पूर्वकृत कर्मोपर होता है। गीतामें कहा है **शूचीनां श्रीमतांगेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते,** योगभ्रष्ट अपनी साधनाके फलस्वरुप श्रीमंत परिवार में जन्म लेता है । **स यत्कामो भवति तत्क्रतुर्भवति**, **यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते**, **यत्कर्म कुरुते तदभिसंपद्यते**-(श्रुति) अत: मनुष्य अपनी कामनाओं के अनुरुप कर्म करता है और कर्मानुसार परलोकादि फल प्राप्त करता है । ऐसे कर्मानुसार योनि प्राप्त होनेके अनेक प्रमाण श्रुतिमें उपलब्ध है । कर्माशयमें पडे फलों को भोगना हि पडता है ।

सकाम कर्म बीना भोगे, क्षय नहीं होते, **नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटि शतैरपि। जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरुपेण बाधते**, **तच्छांतिरौषधैर्दीपै र्जप होमार्चनादिभि:॥ यथा शास्त्रं तु निर्णीतो यथा व्याधिर्चिकित्सित: । न शमं याति यो व्याधि: स ज्ञेय: कर्मजं बुधै:॥ पुण्यैश्च भेषजै: शान्ता: ते ज्ञेया: कर्म दोषजै: । विज्ञेया: दोषजास्त्वन्ये केवला वाऽथ संकरा:॥ नहि कर्म महत्किंचित् फलं यस्य न भुञ्जते। क्रियाध्ना कर्मजारोगा: प्रशमंयान्ति तत्क्षयात्॥** आयुर्वेद इसे भूताभिषंग या कर्मजव्याधि का नाम देता है,

जिनका भोग न हुआ हो, ऐसे अभोक्त कर्म प्रारब्ध बनते है और अगले जन्ममें फलदाता बनते है । जन्मांन्तर के पापकर्म मनुष्य को नाना प्रकार की व्याधि के रुप में पीडा देते हैं । महर्षि कणाद के मत से **आत्ममनसोः संयोगविषेशात्संस्काराच्च स्मृतिः**, वैशे.अ.९॥ **तथा जातीयकाः संस्कारा वृत्तिभिरेव क्रियन्ते संस्कारैश्च वृत्तय इत्येवं वृत्तिसंस्कारचकर्मनिशमावर्तते**, पा. यो॥ हम अपने पूर्वजन्म से संस्कारों के रूपमें कुछ अभुक्त फल साथ लेकर आते है । संस्कार चित्तकी वृत्तियो से ही उत्पन्न होते है । परिणामतः हम जन्मके साथ ही माताका स्तनपान करते है, क्योंकि वह संस्कार हमारे चित्तमें जन्मान्तरोंके संस्काररूपेण अंकीत है । एक ही पिता के दो पुत्रों में, एक लेखक या चित्रकार बनता है, तो दूसरा डॉक्टर या संगीतकार । पूर्व जन्मों के शुभाशभ कर्म हम यहां भोगते है ।

एकबार किसीने मुझे प्रश्न किया था कि, यदि हम पाप कर्मका फल भोगते है, तो कौनसे कर्मकी सजा भोग रहे है, वह ज्ञात होना चाहिए । कोर्ट सजा सूनाती है, तो अपराध की धारा बताती है ।

दण्डित व्यक्तिको यह जानकारी होनी चाहिए, कि उसने पूर्वजन्म में, किस योनिमें, क्या पाप व दुष्कर्म किया है, जिसके कारण उसे यह सजा मिली है। प्रथम पूर्वजन्मको जानें फिर अर्जित कर्मफलको । ऐसा ही प्रश्न श्रीरामकृष्ण परमहंस आया था और उन्होंने निम्नानुसार प्रश्नका समाधान किया था ।

प्रश्न - हम कैसे मान ले कि हम जो सुख-दुःख भोग रहे है वह पूर्व जन्मो का फल है? इसका स्पष्टिकरण श्री रामकृष्ण परमहंस के निम्नांकित तीन प्रश्नोत्तर से सुस्पष्ट होगा । <u>तर्कको कुछ हमनें विस्तृत किया है</u> ।
प्रश्न - आप किस बात को न्याय संगत मानते हैं, पहले कर्म किया जाय और फल बाद में दिया जाय, या पहले फल दिया जाए और कर्म बाद में किया जाय ? एकमास नौकरी के उपरान्त हि पगार मिलेगी भाई ।

उत्तर - पहले कर्म किया जाय और फल बाद में दिया जाय, यही न्याय संगत है ◻

प्रश्न - अच्छा! अब यह बताइयें कि आपको पैदा होते ही, जो यह शरीर मिला है, वह बिलकुल मुफ्त में मिला है, या किन्हीं कर्मों का फल है ?

उत्तर - मुफ्त में नहीं मिला है, बल्कि किन्हीं कर्मों का फल है ।

प्रश्न - ठीक है ! अब मेरा अंतिम व तीसरा प्रश्न यह है कि - प्रथम आपने यह स्वीकार किया कि पहले कर्म किया जाय और फल बाद में दिया जाय यही न्याय संगत है, और फिर यह कहा कि यह शरीर मुफ्त में नहीं मिला, किन्हीं कर्मों का फल है – तो कृपया अब यह बताइयें कि जिन कर्मों का फल यह शरीर है, वे कर्म आपने कब किये ?

उत्तर - पूर्व जन्म में! तो पुनर्जन्म की सिद्धि हो ही गई । इस प्रकार परमहंसजीने प्रत्युत्तर दिया ।

पूर्व जन्म के कर्मो के कारण, जैसे, अगर पुनर्जन्म को आप नहीं मानते .. तब बोलिए कि, फिर कोई जन्म से अंधा, बहरा, लंगड़ा और जड़बुद्धि क्यों? कर्म तो अभीतक किए नहीं । तो फल किसका - पूर्व जन्मार्जित कर्मोका ।

दूसरा विचारणीय तथ्य है कि यदि इस जन्म की अपंगता पिछली योनि के कर्मो का फल है, तो न्याय की मांग है कि दण्डित व्यक्ति को यह जानकारी होनी चाहिए कि, उसने पूर्वजन्ममें, किस योनिमें, क्या पाप व दुष्कर्म किया है, जिसके कारण उसे यह सजा मिली है, क्योंकि, सुधारकी सम्भावना बनी रहे । अगर अपंग व्यक्ति को पूर्व योनि में किए दुष्कर्म और पापकर्म का पता नहीं है और सत्य भी यही है कि उसे कुछ पता नहीं है तो क्या आवागमनीय पुनर्जन्म की धारणा पूर्णतया भ्रामक और कतई मिथ्या नहीं हो जाती?

जी नहीं! आपका ये मांगना कि आपको अपने पूर्व जन्मका स्मरण हो सर्वथा अनुचित है !

जरा सोचिये, कि यूँ ही जब किसी को जन्म लेने पर, किसी से बदला नहीं लेना होता, लेकिन फिर भी, संसारमें ऐसी भयंकर मार-काट मची है, केवल इस जन्म की स्मृतियों से ही मनुष्य युद्ध पर युद्ध लड़ रहा है, द्वेष फैला है, यदि परमात्मा हमे ये भी बता दे, कि पिछले और उस से पिछले

और उस से पिछले जन्म में किसने हमारे साथ और हमने किसके साथ क्या किया था तो संसार कि क्या हालत हो ? जन्मान्तरों के मित्र-शत्रुओं के रागद्वेषमें ही जीवन पूर्ण हो जाएगा । क्या रहेगा इस जन्म का अर्थ और फलतः नये वैर और स्नेह उत्पन्न होते ही जाएंगे । अनन्त कालीन ये शृंखला बनी रहेगी । परमात्मा परम कृपालु हैं, जो विस्मृति कराता हैं । पूर्व की छोडो, इस जन्मकी भी अच्छी-बुरी बाते हम कालान्तरमें भूल जाते हैं अन्यथा पुत्र एवं पत्नीके वियोगमें क्या हम जीवत हर पाएंगे ? पत्नी के अकाल मृत्यु के उपरान्त पुनर्विवाह कर पाएंगे ?

जैसे विदित ही है की, संसार में भी यदि किसी के साथ बचपन में कोई अप्रिय घटना हो जाये तो व्यक्ति उसे जीवन भर भुला नहीं पाता, और उसी क्रोध, पश्चाताप, ग्लानी और बदले की भावना से अपना संपूर्ण जीवन नष्ट कर लेता है ▫विद्वानों की सदा से राय रहती है की यदि कुछ अप्रिय हो जाये अथवा कोई गलती हो जाये तो अबकी उसे भूल कर नए सिरे से आरम्भ करो और ग्लानी को त्यागो ▫

किसने हमारे प्रति व्यवहार बुरा किया और हमने किसके प्रति बुरा किया, वो सब, इश्वर हमारी स्मृति मिटा देता है, मानो कह रहा हो, पिछला सब भूलकर, नयी शुरुआत करो और जीवन धन्य बनाओ ▫

और फिर परमात्माका न्याय देखकर पूर्ण रूप से नहीं परन्तु कुछ कुछ अंदेशा तो हो ही जाता है की पूर्व जन्म में क्या गलत काम किया था ▫जैसे यदि जड़बुद्धि है तो अर्थात बुद्धि का अनुचित उपयोग किया, यदि लंगड़ा है अर्थात पैरों का उपयोग गलत किया, यदि हाथो में अपंगता है तो अर्थात हाथो से कुछ अनिष्ट किये, यदि नेत्रो की अपंगता है अर्थात नेत्रो से पाप कर्म किये, वाणी में अपंगता है अर्थात वाणी से कटु शब्द बोले, कमजोर है तो बल का दुरूपयोग किया इत्यादि इत्यादि ▫इसीसे सुधर की सम्भावना बन जानी चाहिए ▫

इसीलिए संसार में सब नयी शुरुआत कर सके और पूर्व जन्मकृत पाप कर्मो की ग्लानी से ऊपर उठ सकें इसके लिए हमे पूर्व जन्म कृत कर्म भूल जायें

ये ही उचित है ।इसके लिए तो हमे परमात्मा का धन्यवादी होना चाहिए और आप आपत्ति करते है?

दूसरा तर्क यह हैं कि, कर्म फलको उत्पन्न करता ही हैं । कर्मसे फलका निर्माण न हो यह संभव ही नहीं । वर्तमान जीवनमें हमे हमारे कर्म सर्जित दण्ड-शिक्षाके कारण ज्ञात हैं, क्यों कि कर्म, अवस्था-काल, पदार्थ, कर्ता आदिका हमे ज्ञान हैं, जिसके प्रमाण हमारे प्रत्यक्ष हैं, यथा हम जान सकते है कि मेरे फलां-फलां कर्मका यह फल-दण्ड हैं । किन्तु कर्मके काल, कारणादिका हमे ज्ञान नहीं होता तो भी फल तो अवश्य मिलता किन्तु कारण नहीं पता चलता । किसी नवजात शिशुको कोई उठा जाता हैं, बच्चे का, हाथ किसी विषैले पदार्थ पर लगकर स्वयंकी आंख पर लग जाता है और वह अंध हो जाता है । अंध बालकको न रखनेकी ईच्छासे, उसे किसी अनाथालयके द्वारपर अज्ञातरूपसे छोड दिया जाता हैं । अनाथालयवाले अंध बालक को आश्रय देते हैं । बालक अनाथालयमें पलता हैं – बडा होता हैं । क्या यह बालक कभी भी नेत्रांध होनेका कारण जान पाएगा ? नहीं । क्योंकि कर्म उसकी अज्ञात अवस्था का था, उसके कर्मका न तो स्वयं ज्ञाता है न कोई दृष्टा, यद्यपि कर्मका फल तो भोग ही रहा है, भले ही वह अज्ञातावस्थाका क्यों न हो ।

हम कभी-कभी अपने बच्चोंको, शरारतो की शिक्षा करते हैं, किन्तु बालक की तब अवस्था या परिपक्वता नहीं होती कि, वह शिक्षाका उचित कारण जान सकें । हां, कालान्तरमें परिपक्वता आने पर वह जान सकता हैं – वैसे ही जन्मान्तरो के कर्मको जाननेके लिए दिव्य ज्ञान की आपश्यकता रहती हैं । वह कर्म इस शरीरके हाथ-पैर-नेत्रादि जैसे इन्द्रियों से नहीं किए गए हैं, यथा अतीन्द्रिय कर्म हो गए और अतीन्द्रिय कर्मो को जानने के लिए अतीन्द्रिय ज्ञान होना जरूरी हैं ।

हमें, पूर्वकृत कर्मोफलोका बन्धन तो है, किन्तु जन्मान्तरोके कर्मो की स्मृति नहीं हैं, यथा दुःखका क्या कारण हैं वह जानना सर्वथा असंभव हो जाता हैं । हां, योग के अभ्यास या इष्टबलकी वृद्धि के साथ इसका स्मरण भी संभव हो सकता हैं, किन्तु यह सामान्य बात नहीं हैं । अब पूर्व जन्मो के पाप कर्म व्याधि बनकर पीडा देते है, तो उसका उपाय भी होगा ।

जब रोग है तो, उसका निदान भी होना चाहिए, रोगका कारण भी होना चाहिए और उपाय-औषध भी होनी चाहिए । **जन्मौषधिमन्त्र तपः समाधिजाः सिद्धयः** - पा.यो.४.१॥ उसका निवारण औषध, व्रत, तप, होमादि है । ये स्वास्थ्य जो है, रंगरूप है या रोगादि क्षतिया है, वो जन्म से होती है । किसी को अच्छा स्वास्थ्य जन्मसे सिद्ध है, किसी को औषध प्रयोग करना पडता है, कभी-कभी औषध भी काम नहीं करती तब, मंत्रजपादि करना पडता है, तो कभी व्यायामादि तप करने पडते है ।

यथा, नारदजीका कोमल हृदय, ऐसे परितप्त, दुःखी लोगोको देखकर कारुण्यभावसे भर गया और वे द्रवित हो गये, वे है **संतपरमहितकारी** । इनको, दुःख संतप्त लोगों के लिए, भवरोग का निवारण चाहिए । यही हैं संत का स्वभाव, इनका कारूण्य है ।

केनोपायेन चैतेषां दुःखनाशो भवेत् ध्रुवम्,
इति सञ्चित्य मनसा विष्णुलोकं गतस्तदा ॥ ६॥

केनोपायेन चैतेषां दुःख नाशो भवेत् ध्रुवम् यह नारदजी की करूणा है, मृत्युलोक के मानवोंके दुःख निवारणके उपाय चाहिए । **जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरुपेण बाधते** उसका उपाय चाहिए । **नानायोनिसमुत्पन्नान्क्लिश्यन्ते स्वकर्नभिः** अनेक प्रकार की समस्याए है, दुःखोका उद्भव तो आगे बता चूके है । इतने सारे व्याधियों के कितने उपाय होंगे । अगर एक ही व्याधि होती, तो वे औषध दे देते । जिस प्रकार ध्रुव, प्रहलादको दिया था । बहुत सारी व्याधियां है, इसलिए ही निष्णात की सलाह लेनी पडेगी ।

जिस प्रकार हर रोग के डॉक्टर अलग-अलग होते है । हर कामनाके लिए भिन्न-भिन्न आराध्य देव है। **आरोग्यं भास्करादिच्छेत् धनमिच्छेद् हुताशनात् । ज्ञान च शंकरादिच्छेत् मुक्ति मिच्छेत जनार्दनात् ॥** शास्त्रकार का कथन है कि, आरोग्य की कामना सूर्य नारायण से करे, धन की कामना अग्निनारायण से, ज्ञान की कामना भगवान शिवसे करें, लेकिन मोक्ष या मुक्ति की कामना भगवान नारायण से करें । वे सर्व कामनाओं की पूर्ति करेंगे । भगवानको, विष्णु सहस्रनाम स्तोत्रमें **वैद्योवैद्य महायोगी**, सूर्य भी नारायण ही है । नारायण तो वैद्य भी है, औषध भी है **भेषजंभिषक्** ।

धन्वन्तरी के रूपमें वह महावैद्य है,जिसके पास भवरोग की दवा है । **औषधं जगतःसेतु** वे स्वयं ही औषध हैं । उपचार भी रामबाण चाहिए, जो कभी खाली न जाए । नारदजी ने सोचा, अब तो नारायण जैसे बडे वैद्यके पास जाना ही पडेगा । **क्षीरोदमथनोद्भूतं दिव्य गन्धानुलेपिनम् । सुधाकलशहस्तं तं वन्दे धन्वन्तरिंहरिम् ॥ शरीरे जर्जरी भूते व्याधिग्रस्ते कलेवरे । औषधं जाह्नवीतोयं वैद्योनारायणो हरिः॥ अयं मे विश्व भेषजोऽयं शिवाभिमर्षणः॥ अच्युतानन्त-गोविन्द-विष्णो नारायणामृत । रोगान्मे नाशयाशेषान् आशु धन्वन्तरे हरे ॥ अच्युतानन्त गोविन्द नामोच्चारणभेषजात् । नश्यन्तिसकलारोगाः सत्यंसत्यंवदाम्यहम् । अच्युतानन्त गोविन्द विष्णोधन्वन्तरे हरे॥ वासुदेवाखिलानस्य रोगान्नाशाय नाशाय ॥** देखो, कितने प्रमाण है, कि भगवान एक कुशल वैद्य भी है । इनके पास हर रोग की दवा है । हर रोग का डॉक्टर अलग, टेस्ट कहीं और जगह करना हो, दवा कहीं दूसरी जगह से लेना हो, तो थक जाते है, इसलिए मल्टीस्पेश्यालिटी होस्पिटलमें जाते है, जहां सब एक साथ उपलब्ध होता हो । यहां वैद्य भी नारायण, दवा भी नारायण, उपचार भी नारायण, वाह.. कितना अच्छा, उपरान्त स्वस्थ होनेकी संपूर्ण गारन्टी ।

इति सञ्चित्य मनसा विष्णुलोकं गतस्तदा, जितना बडा रोग, इतने कुशल वैद्यकी आवश्यकता । यहां तो अनेक जन्मके पाप कर्म जनित नानाव्याधियुक्त, (भवरोग) पीडावाले लोग हैं । केवल, ऋतु परिवर्तन से हुआ ज्वर या वायरल रोग नहीं हैं । पक्षघात या कैसर नहीं हैं । केवल दीर्घ कालीन बिमारी नहीं हैं या कुष्टरोग नही हैं। सुदीर्घकालीन, जन्मान्तरोके कर्मोसे आई पीडा हैं । ऐसे रोगका निवारण या रामबाण इलाज तो केवल **वैद्यो नारायणो हरिः** हि है, यथा उनके दुःखों का उपाय पूछने वे विष्णुलोकमें गए । विष्णु-विविष्टे व्याप्नोति वासः, कालके प्रत्येक क्षणमें - ब्रह्माण्ड के हर कणमें जो ईश्वरीय चेतना बसी है, उसे कहते है विष्णु । नारदजी लोगोंके दुःखका उपचार पूछने गए है । रोगके मूल कारण की तहतक-गहराईमें समझकर, उपाय पूछने महावैद्य के पास गए । कुछ व्याधिया बडी ही दुःसाध्य होती है, जिसकी दवा भी, बडी कठीनाईसे प्राप्त होती है । सुकन्या को औषध के लिए अश्विनीकुमारों से मिला था और

हनुमानजीको लक्ष्मणजी की दवाके लिए लंका से हिमालय तक जाना पडा था । व्याधि की गंभीरता को देखते हुए, श्री नारदजीको भी विष्णुलोक जानेकी आवश्यकता लगी । विष्णुलोक को वैकुण्ठ भी कहते है - जहां कोई कुण्ठा न हो, नकारात्मकता या निराशा न हो । नित्य अस्खलित आनन्द की अमृतधारा प्रवाहित हो ऐसा स्थान ।

दुःखका कारण है, अंतःकरणमें बसा राग-द्वेष – **ममत्वेन स्नेहेन आकृष्टा मतिर्यस्य ममेति - ममत्वम्** ममत्व । उस राग से वैराग्य कैसे उत्पन्न हो? हृदयमें भौतिकता होगी-भौतिक चीजों के लिए ममत्व होगा तो, उस चीजका नाश एवं भोगमें विक्षेप, पुनः दुःखका कारण बननेवाला ही है ।

हृदय में इस भौतिकता-राग-द्वेष की जगह, अगर ईश्वरीय प्रेम भर दे, तो आनन्द ही आनन्द है, सुख शाश्वत है । किन्तु, जबतक हृदय में राग-द्वेष है तबतक प्रेम कैसे आएगा? पंचदशीमें, द्वैतविवेक नामक चतुर्थपरिच्छेद में, श्री विद्यारण्य स्वामिने लिखा है - **दूरदेशं गते पुत्रे जीवत्येवात्र तत्पिता । विप्रलम्भकवाक्येन मृतं मत्वा प्ररोदिति ॥ मृतेऽपि तस्मिन्वार्तायामश्रुतायां न रोदिति । अतः सर्वस्य जीवस्य बन्धकृन्मानसं जगत् ॥** ३३-३४॥ किसी व्यक्तिका पूत्र, दूर परदेशमें रहता था और किसी व्यक्तिनें, उसे गलत समाचार दिया कि, आपका पुत्र मर गया है । वास्तवमें वह मरा नहीं था, फिरभी वह पिता फूट-फूटकर रोने लगा । इससे विपरित यदि, वह मर भी गया होता, किन्तु उसे समाचार नहीं मिलते तो शोक नहीं करता । अब देखो, पुत्रको मृत या जीवित न देखने पर भी, शोक संतप्ति क्यों ?

वैद्यो नारायणो हरिः नारायण महावैद्य है, यथा नारदजी, इसका उपाय पूछने, स्वयं नारायणके पास गयें है ।

तत्र नारायणं देवं शुक्लवर्णं चतुर्भुजम् ।
शंखचक्रगदापद्म वनमालाविभुषितम् ॥ ७॥

तत्र नारायणंदेवं - नारदजी विष्णुलोकमें गयें । नारायण के विषयमें आगे चर्चा कर चूके है । ये नारायण कौन हैं ? **नराज्जातानि तत्वानि नाराणीति विदुर्बुधा**, **तस्य तान्ययनं पूर्व तेन नारायणस्मृतः** - भाग. ॥ **आपोनारा इति प्रोक्ता आपो वै नर सूनवः**, **अयनं तस्य ताःपूर्वं तेन नारायण स्मृत**ः मनु.॥

नराणां जीवानां समूहः नारम्, नारमयते जानाति इति नारायणः मनु.॥ प्राणीमात्र में एक चेतना है जिसके कारण ही वह कुछ भी करनेको समर्थ है । जब ये चेतना चली जाती है तब, आंख होते हुए भी वह देख नहीं सकता, कान होते हुए भी वह सुन नहीं सकता । उसके आगे-पीछे घूमनेवाले और उसकी सेवा करनेवाले सभी उसे जला देते हैं या दफना देते है । वह जो चेतना है जिसके सहारे मन-बुध्दि-इन्द्रियादि चलते है वो ही परमात्माका अंश है, जीवात्मा । गीतामें भी कहा है कि **ममैवांशो जीवलोके जीवभूत सनातन** । श्रुति भी कहती है **एक एव ही भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थिता** प्राणीमात्र के अंदर परमात्मा का अंश विद्यमान हैं । **कीटादि ब्रह्म पर्यन्तं प्राणभ्रत्सुसमेषु च चेतना दृश्यते सापि शक्तिरीश्वर संज्ञिता** छोटेसे कीटसे लेकर ब्रह्मा पर्यन्तकी सृष्टिमें जो चेतना दीखती है वो ही परमात्मा की शक्ति है । अणु-परमाणु में बसा चैतन्य ईश्वरीय शक्ति का साक्षात्कार है । अतः सारी सृष्टी में जो बसा है वह नारायण ।

अब दुसरे अभिगम से देखें । यजुर्वेदके पुरूषसुक्त में, विराटपुरूषका सुंदर वर्णन हैं । सारे ब्रह्माण्ड जिनमें, बसे है, वो है नारायण । **अन्तर्बहिः प्रविष्य स्वयमेव विभाति** जो शक्ति पूरे ब्रह्माण्ड में ओत-प्रोत (व्याप्त) हैं, जो अन्दर भी है एवं बाहर भी है वो ही नारायण है जैसे कि वृक्षमें बीज है और बीजमें वृक्ष भी हैं । आकाशमें घट है और घटमें आकाश भी है । कलश के बहार भी हवा है एवं कलश के अंदर भी हवा है, हवा में कलश है और हवा कलश में हैं । इस प्रकार ब्रह्माण्डमें अन्दर-बहार सर्वत्र श्री हरि है । काल के प्रति क्षण में और स्थल के प्रति कण में विद्यमान परम चेतना का नाम हैं नारायण ।

शुक्लवर्णम् - भगवान श्री नारायण के ध्यानमें बहुधा मेघवर्ण, घनश्याम आदि आता है । यहां भगवानको नारदजीने शुक्लवर्ण देखा है, क्यों ? नारदजी लोक कल्याण की भावना से, कारुण्य सभर हृदय से भगवान के पास सहेतु गए है । उनकी भावना सात्विक है । वे लोगों को ईश्वराभिमुख करके, सच्चिदानन्द की अनुभूति कराना, उनका आशय हैं । अतः उन्हे सात्विक विष्णुके दर्शन होते है । **आनन्दः सात्विको भाव आनन्द सः हरि स्वयम्** - सात्विक भावका वर्ण शुक्ल(श्वेत) है । यह सात्विक भाव ही

सच्चिदानन्द स्वरुप परमात्मा का साकार-सगुण स्वरुप है । भगवान् सत्त्वगुणाधिष्ठाता है, यथा, सात्विक भाव को शुक्ल वर्ण माना है **सत्वगुण समन्विताय शुक्लवर्णाय श्रीमन्नारायणाय नमः, शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।** श्रीविष्णसहस्रनाम में - **शुभांग शांतिद** कहा गया है । **उकारः सात्विको शुक्लो विष्णुरित्यभिधीयते -** यो.चुडा.७५॥ समग्र ब्रह्माण्ड के पिता है - **मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम । संभव:सर्वभूतानां ततोभवतिभारत । सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तय: संभवंति या:, तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रद: पिता** । गीता १४/३-४ । ये जो बीज है वह शुक्र है-यथा श्वेत है - सर्वादिकारण भगवान सबके बीजरूप होने के कारण शुक्लवर्ण है । उनके चार हाथ है।

शंक-चक्र-गदा-पद्म वनमाला विभूषितम् - ऐसे नारायण की चार भुजाएँ हैं । हाथ का काम है, किसीको उठाना, मदद करना । जिसमें शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये हुए हैं । ये भी बहुत सूचक है । ये आयुध जो, परमात्माने धारण किए है, उनका भी विश्ष्ठ अर्थ है । **इच्छा शक्तिमयपाश अंकुशज्ञानरूपिणम् । क्रियाशक्तिमयेबाण धनुषीदधदुज्वलेम् ।।** पुराणों में आयुधो को मात्र धातुओंके आकार ही नहीं माना है, उसमें भी दिव्य चेतना का प्रवाह होता है, यथा देवोकी पूजामें आयुधोंकी भी पूजा होती है । क्षत्रियलोग विजयादशमी के दिन शस्त्रपूजा करते है । वे देवता के दिव्य आवरण है - उनकी ही शक्ति है । निश्चित कार्य के लिए जिसका प्रयोग देवता करते है । कहां शंख का प्रयोग करना है, कहां खड्ग का, कहां गदाका और कहा चक्रका यह सुनिश्चित होता है ।

गदा - बुद्धि का, शंख तामस अहंकार का, चक्र सात्विक अहंकार का, पद्म - ऐश्वर्य, वनमाला - मूलप्रकृति यो पंचमहाभूत संघात का सांकेतिक रूप है । चक्र को सुदर्शन चक्र कहते है - जिससे सम्यक् अच्छा दर्शन हो वही सुदर्शन - सु**दर्शन महाज्वाल कोटिसूर्यसमप्रभ । अज्ञानान्धस्य मे देव विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय** ॥ चक्र की चार आराए परा-पश्यन्ति-मध्यमा-वैखरि इत्यादि वाणी के चार रूप है - जो भगवद्दर्शनका साधन है ।

शंख - अवरस्पराय शंखध्वम् - यजु. ३०.१९। **शंखेन हत्वा रक्षांसि** अथ.४.१०.२। **शाम्यति अशुभमस्मादिति -समुद्रोद्भवजन्तुविशेषः । यस्तु**

शंखध्वनि कुर्यात्पूजाकाले विशेषतः। विमुक्तः सर्वपापेन विष्णनान सह मोदते ॥ वेद ऐवं ज्ञान स्वरूप है, वह अज्ञानने उपर उठने को सावधान करता है - आसुरी शक्तिओं को युद्धके लिए आवाहित करता है, तो सात्त्विक शक्ति के विजयका जयघोष करता है। देवों की पूजा-उपासनामें उनका विशेष उपयोग होता है। भक्त ध्रुव को, प्रभुने दक्षिण मुख पर, शंख श्पर्श करते ही, उनके मुखसे दिव्य स्तुति हूई, मानो वैदान्त के आचार्य हो।

चक्र - दुसरा आयुध है सुदर्शन चक्र। सुदर्शन जिससे अच्छे दर्शन प्राप्त हो, वेदांत-विज्ञान से विचारों को नयी दिशा मिलती है। कई भक्त बहुत ही भावप्रधान होते है, किन्तु उन्हे शास्त्र, दर्शन, उपनिषदादि का ज्ञान नहीं होता। ईश्वर पर की अनन्य श्रध्दा से उनके ह्रदय में ज्ञानका प्रादुर्भाव होता है। वें ज्ञानरुपी दिव्य चक्षुसे-सुदर्शनसे परमात्माको पा सकते है। कबीर, रहमान, तुलसी, मीरा, नरसिंह आदि भक्त, शास्त्र को नहीं पढें, फिर भी उनकी रचनाओं में वेदांत के उत्तम दर्शन है।

गदा - गदयतिपीडयत्यनया विपक्षमिति शेषः, अतएवासौ गदेति नाम्ना प्रसिद्धाअपरागदातुएतदुपलक्षणेनैवसिद्धेतिबोध्यम् । वा.पु.। **गदोनामा सुरोह्यासीत्त्राद्वज्रतरोदृढः।** गदा का कार्य है दबाना। उपासक को उपासना में अन्तराय-विध्न को दूर करनेवाली भगवान की गदा। साधक को काम-क्रोधादि विकार मार्गबाधक होते है। उपासना के फलस्वरूप ऐसे विकारों को भक्त के हृदय से निकालकर उसे निर्मल बनाने का काम गदा करती है।

पद्म - पद्यते इति - ऐश्वर्यसूचकः। परमात्मा ने आयुध अपने भक्तो के लिए ही धारण किए है। जो विरक्त है, संसार से परे है, कमल की तरह पंक में रहते हुए भी पंक से निर्लेप है वें तो परमात्मा के हाथ में ही है। वे सदैव ईश्वर के हृदय में बसे है, निर्लेप है।

वनमाला विभूषितम् - वर्णन में आगे **वनमाला विभूषितं** आता है। ईश्वर को निसर्ग से प्रेम है, निसर्ग को गले लगा रखा है।

फूल समर्पित होने की भावना से ही खिलते है। जिसका शुध्द प्रेम ईश्वर के प्रति है, जो ईश्वर को पूर्णतया समर्पित है, उसे परमात्मा हृदय से वनमाला

की भांति आलंगित रखते है । जो फूलों की तरह कांटो में पलकर भी हंसता है, किसीके चरणों में समर्पित होने में खुश है, डाल से छूटना निश्चित होते हुए भी खिलता है और परिमल देता है उसे परमात्मा हृदय से आलंगित करते है । **स्वमायां वनमालाख्यां नानागुणमयी दधत्। वासच्छन्दोमयं पीतं ब्रह्मसूत्रं त्रिवृत्स्वरम्** - भागवत ॥ श्रीअंग के उपर जो माला है वह प्रभुकी गुणमयी, आल्हादिनि, दिव्य माया है ।

कोई व्यासपीठ से बोल रहा था, पुष्पको तोडकर उसका जीवन बरबाद मत करो, इश्वरको समर्पित करके क्या किसीको कुछ मिला है - यह व्यर्थ बाते है, पुष्पकी शोभा वृक्ष पर ही है । वक्ताने गीता भी पढी होती, तो ऐसा नहीं बोलते **- पत्रं पुष्पं फलंतोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति । तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः**-गी.९.२६॥ माला भी तो पुष्पों की बनी है, बात निकली है तो, पुष्पो की भी महिमा बता देते है, जगदम्बाका एक नाम कुसुमप्रिया भी है । **पुष्पे देवाश्च संस्थिताः** ये पुष्पजो है वह परमात्माकी दिव्य प्रकृतिका न मात्र प्रतिक है, स्वयं देव है। **त्रिवर्गसाधनं पुष्पं तुष्टिश्रीपुष्टिमोक्षदम् । पुष्पमूले वसेद् ब्रह्मा पुष्पमध्ये तु केशवः॥ पुष्पाग्रे तु महादेवः सर्वे देवाः स्थिता दले।तस्मात् पुष्पैर्यजेद् देवान्नित्यं भक्तियुतो नरः॥ परं ज्योतिःपुष्पगतं पुष्पेणैव प्रसीदति । त्रिवर्गसाधनं पुष्पं पुष्टि-श्री-स्वर्गमोक्षदम् -** मेरूतंत्र ॥ पुष्पमें निमित्तोपादान कारण स्वयं भगवान ही है । कुछ बाते और भी है **- सततं पुष्पदीपाभ्यां पूजयेद् यस्तु देवताम् । ताभ्यामेव चतुर्वर्गःकथितो नात्र संशयः॥ पुष्पैर्देवाः प्रसीदन्ति पुष्पे देवाश्च संस्थिताः। चराचराश्च सकलाः सदा पुष्परसाः स्मृताः॥ दैवस्य मस्तकं कुर्यात्कुसुमोपहितं सदा ।किंचाति बहुनोक्तेन पुष्पस्योक्ति-र्मतल्लिका । परंज्योतिःपुष्पगतं पुष्पेणैव प्रसीदति ॥ पुष्पैर्देवां प्रसीदन्ति पुष्पै देवाश्च संस्थिता न रत्नैर्न सुवर्णेन न वित्तेन च भूरिणा तथा प्रसादमायाति यथा पुष्पैर्जनार्दन** - का.पु ६९. १०५-१०७॥ अर्थात् देवता का मस्तक या सिर हमेशा फूलों से सुशोभित रहना चाहिए। देवता रत्न, स्र्वण, द्रव्य, व्रत, तपस्या या अन्य किसी वस्तु से उतने प्रसन्न नहीं होते, जितना पुष्प चढ़ाने से होते हैं । परमात्माका मस्तक चरण कण्ठ पुष्पादित होने चाहिए । परमात्मा पर चढें पुष्पका दर्शन-नेत्र स्पर्श पापनाशक है ।

इस प्रकार, नारदजीने शंख-चक्र-गदा-पद्म-वनमाला धारण किए हुए प्रभुके, जब दर्शन किये, तब हर्षावेशसे गद्गदित कंठसे स्तुति करने लगे ।

यहां एक बात विशेष हैं । प्रायः लोग ऐसा बोलते हैं कि, इस कपडोंमें या साडीमें आप अति सुन्दर लगती हों । इस आभूषणमें आप की बहोत अच्छी लगती हैं । इसका अर्थ, बीना सुन्दर आभूषण, मेकअप या वस्त्र स्वयं में कोई सौन्दर्य नहीं हैं । परमात्मा तो **स्वयं सत्यम् शिवम् सुन्दरम्** हैं । भगवानके कंठदेशपर रहनेसे वनमाला की शोभा विभूषितम् विशिष्ट हो जाती हैं । शंख-चक्र-गदा-पद्म-पिताम्बर या वनमाला से भगवान की शोभा नहीं हैं, किन्तु, भगवानके साथ रहनेसे उन सबकी शोभा बढ जाती हैं । गांधीजीका चश्मा, राणा प्रताप की ढाल या शिवाजीकी तलवारकी किंमत, इसलिए है, क्योकि वे इन महापुरूषोका सान्निध्य पाए हैं । संतोके चरणोंमें चडे, पुष्प शिर पर चडाते हैं, उनकी पूजा करते हैं और कुछ लोग पुष्पसे ही अपनी शोभा बढाते हैं । प्रभुके सर्वांग कमल समान हैं । उनके चरणकमल, करकमल, नयनकमल, अधरकमल, हृदयकमल सौन्दर्यका महासागर हैं वे । स्वयं कमलकी शोभा भी उनके आसीनस्थ होनेसे बढती हैं - मधुराधपतेरखिलं मधुरम् ॥ **पुष्पं त्वदीयं तोयं त्वदीयं -** पद्म.पु.॥ ये जो पुष्प है, हमने तो नहीं बनाए, परमात्मा की संपत्ति है, उसपर हमारा अधिकार नहीं हो सकता, तथापि प्रतिकरूपमें परमात्माको समर्पित करनेका भाव है । वनमालामें जो पुष्प चढाए गए है वे, **पुष्पं नानाविधं दद्यादात्मनो भावसिद्धये। अमायामनहङ्कारमरागममदं तथा॥ अमोहकमदम्भं च अद्वेषाक्षोभके तथा। अमात्सर्यमलोभं च दशपुष्पं प्रकीर्तितम्॥ अहिंसा परमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहम्। दयाक्षमाज्ञानपुष्पं पञ्चपुष्पं ततः परम्॥ इति पञ्चदशैर्पुष्पैर्भावपुष्पैः प्रपूजयेत् -** मेरूतंत्रे॥ यथा अमात्सर्य, निर्लोभ, निर्ममोह, निरहंकार, अहिंसादि पुष्प है जो भगवान को वनमाला के रूपमें समर्पित है ।

दृष्ट्वा तंदेवदेवेशं स्तोतु समुपचक्रमे ।

इस प्रकार परमात्माका ऐसा दिव्य स्वरूप देखकर महर्षि नारद स्तुति किए बीना कैसे रह सकते है, भावनाओंकी अभिव्यक्ति या अनुभूतिका वर्णन हो, वाणीसे ही होता है।

नारद उवाच - नारदजी स्तुति करते हुए बोले -

नमोवाङ्मनसातीतरूपायानन्तशक्तये ॥ ८॥
आदिमध्यान्त हीनाय निर्गुणाय गुणात्मने ।
सर्वेषामादिभूताय भक्तानामार्ति नाशिने ॥ ९॥

इस दो श्लोककी स्तुतिमें भगवानका सत्यस्वरूप बताकर नारदजीने बहोत कुछ कह दिया है, मानो उपनिषदोका अर्क भर दिया हो, कितना अद्भूत वाक्चातुर्य है । यहां एक विचित्र बात है - नारदजी शंखचक्रगदापद्म एवं वनमाला विभूषित परमात्मा का दर्शन करते है, किन्तु स्तुति करते है - विराट - अव्यक्त की ।

ऐसे ही, श्रीमद्भागवत में भगवान वेदव्यासजी स्तुति करने अपराधकी क्षमा मांगते है । **रूपं रूपविवर्जितस्यभवतो ध्यानेन यत्कल्पितं, स्तुत्यानिर्वचनीयताखिल गुरो दूरिकृता यन्मया, व्यापितवच्च निराकृतं भगवतो यत्तीर्थयात्रादिना,क्षन्तव्यं जगदीश तद्विकलतादोषत्रयं मत्कृतं** □ अर्थात, हे भगवान, तुम अरूप हो और मैंने अपने ध्यान में तुम्हें रूप दे दिया □हे अखिल जगत के गुरु, तुम अवर्णनीय हो, पर अपनी स्तुतियों में मैंने इस सत्य का उल्लंघन कर दिया है □तीर्थयात्रा करके मैंने तुम्हारी सर्वव्यापिता से इंकार किया □हे जगदीश, मेरे इन तीन दोषों को क्षमा करना ।

नमोवाङ्मनसातीतरूपाय - स्तुति का प्रारम्भ वाणी से होता है, वाणी मनके अधीन है - मनकी अभिव्यक्तिका साधन है । **यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह -** तैत.उपनिषद् । वाणी तो प्रकृति है और सांख्यानुसार प्रकृति सक्रीय होनेपर भी जड है, इसकी स्वतः शक्ति कुछ नहीं । शब के पास मुख होते हुए भी नहीं बोल सकता - चेतनकी आवश्यकता है । वाणी या मनमें इतना सामर्थ्य कहां है कि, वो परमात्माका वर्णन कर सकें । परमात्मा का वर्णन करनेका सामर्थ्य किसीमें भी नहीं है, यह बात शिवमहिम्नमें पुष्पदंतने अतिसुंदर रीतसे बताई है । वाणी एवं मन थक जाए, तब भी परमात्माका वर्णन नहीं हो सकता । परमात्मा तो **शब्दातिगः** - शब्दातीत हैं। हम बता सकते है कि लड्डु मीठें हैं, कैसे मीठे ?

शक्कर जैसे । शक्कर कैसी मीठी? अनुपमेय, इसका जवाब नहीं है । वाणी इस से आगे नहीं जा सकती । यह वाणी की मर्यादा है । शक्कर मीठाश का मूल श्रोत है, अतः अनुपमेय है ।

वाणीके बाद मनकी शक्ति देखे - **मनएव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः । बन्धायविषयासक्तं मुक्त्यैनिर्विषयंस्मृतम्** - ब्र.बिं.उप.॥ **बन्धु रात्माऽऽत्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः-** गीता ॥ **मनोवशे सर्व वशं बभूव** - वाणी से मन को बलवान माना है । वेदके शिवसंकल्प सूक्त में मनकी महिमा गाई है, अति वेगवान है, व्यक्तिके बंधन-मोक्ष का कारण भी मन ही है । यजुर्वेद में - **यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरंगं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु**॥ (यत् जाग्रतः दूरं उदैति सुप्तस्य तथा एव एति तत् दूरं गमं ज्योतिषां ज्योतिः एकं दैवं तत् में मनः शिवसंकल्पं अस्तु) अर्थात्, हे परमात्मा ! जागृत अवस्था में जो मन दूर दूर तक चला जाता है और सुप्तावस्था में भी दूरदूर तक चला जाता है, वही मन इन्द्रियों रुपी ज्योतियों की एक मात्र ज्योति है अर्थात् इन्द्रियों को प्रकाशित करने वाली एक ज्योति है अथवा जो मन इन्द्रियों का प्रकाशक है, ऐसा हमारा मन शुभ-कल्याणकारी संकल्पों से युक्त हो ! यद्यपि यह मन भी परमात्माका दिव्य अंश आत्माका सेवक है, सेवक से स्वामिकी महिमा ज्यादा होती है । सुषुप्ति में जब सब कुछ आत्मामे लिन हो जाता है तब मन कहां रहता है । यथा सही कहा है **अप्राप्य मनसा सह** परमात्मा को पानेके लिए मन का सामर्थ्य भी अत्यल्प है । **यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्** मन भी तो, परमात्माके अनुग्रहके बीना कहां काम कर सकता है । वह अपना चाहा सबकुछ तो नहीं पा सकता, कुछ अनचाहा भी लेना पडता है – यहां मनका सामर्थ्य भी कम पड जाता है ।

अब चलो, बुद्धिको भी देख ले । लोग कहते है कि, बुद्धि मनसे उपर हैं, **इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः** किन्तु, परमात्माको समझने की बुद्धि भी परमात्मा ही देता है और दृष्टि भी । **तेषां सततयुक्तानां भजतांप्रीतिपूर्वकम् । ददामिबुद्धियोगं तं येनमामुपयान्ति ते -** उन (मुझसे) नित्य युक्त हुए और प्रेमपूर्वक मेरा भजन करने वाले भक्तों को, मैं वह बुद्धियोग देता हूँ जिससे वे मुझे प्राप्त होते हैं -

गीता १०.१०॥ बुद्धिको भी सांख्यने जड-निष्चेतन कहा है । जब सोते है तब बुद्धिमान् भी, स्वप्नमें मूर्खो, जैसे व्यवहार करते है । इसलिए भगवान कहते है यह मेरी दी हुई संपत्ति है, शक्ति है । बुद्धिमानों की बुद्धि परमात्माकी अनुपम भेट है - **सर्वस्य बुद्धि-रूपेण जनस्य हृदि संस्थिते** परमात्मा अनुग्रह करते है तब सद्बुद्धि मिलती है । दृष्टि का भी यही हाल है - **दिव्यं ददामि ते चक्षुःपश्य मे योगमैश्वरम् -** गीता में भगवान कहते है, (समत्वयोग) मेरे स्वरूपको देखनेकी दृष्टि भी मैं ही देता हुं, बुद्धि भी मै ही देता हुं - **बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि** बुद्धि का अधिकारी भी मै ही हुं । अन्यथा, बुध्दि भी कुछ पीछे रह जाते है ।

यन्मनसा न मनुते - परमात्माको जाननेके लिए मन-बुद्धि भी असमर्थ है, स्वयंकी कृपाके बीना वे नहीं मिल सकते । मन - स्पर्श, श्रवण, दर्शनादि इन्द्रियों के सहारे से कुछ प्राप्त करता है, किन्तु, परमात्मा श्रवण-दर्शनादिका विषय नहीं बन सकता । **ममत्वेत्तां वाणीं गुणकथन पुण्येन भविता । पुनामित्यर्थेस्मिन्** ये स्तुतितो मात्र वाणीको पवित्र करनेका बहाना ही है । सारांश परमात्मा मन-बुद्धि-इन्द्रियों का विषय नहीं है । वे सब के सब असमर्थ है । इससे आगे नारदजीने भगवान की अनन्तशक्ति के विषयमें बोला है । यह सब वर्णनका तात्पर्य, सत्यके स्वरूपका दर्शन करानेका है ।

अनन्तशक्तये - परमात्माकी अनन्तशक्ति तो हम प्रत्यक्ष देख ही रहे है। एक सामान्य परिचय यह है कि, हमारी पृथ्वी का व्यास है २५००० माईल एवं गति है, सरेराश १००० माईल प्रति घण्टा । उसकी गति कभी भी मंद नहीं हुई या अनियमित नहीं हुई । यह गति हजारो वर्षोसे यथावत् है । बीना कोई इलेक्ट्रीसिटी, लाखों गेलैन पानी, खारा पानी समुद्रसे उपर चढता है, बीना आरओ प्लान्ट शुद्ध बनता है, बीना टैंक संग्रहित होता है और पुनः बीना किसी पाईपलाईन पूरे भूमण्डलको क्षालित करता है । हमे एक गांवकी या शहरकी बडी टंकी बनानेके लिए, पूरी मिशनरी लगानी पडती है । ऐसे ही प्रकाश, ऐसे ही शुद्ध हवा, बीना कोई कर या बिलके मिलता है । ये तो मात्र एक ही पृथ्वीकी बात कहीं । हमारे सौर मंडळ में, पृथ्वी जैसे कई ग्रह है । ऐसे कई सौर मंडल हमारी आकाशगंगा में है और

ऐसी असंख्य आकाश गंगाए ब्रह्माण्डमें है । यह जो ब्रह्माण्ड है, वह परमात्मा का अंग है, जिसका नियमन परमात्मा सहज ही करते है । एक अदृश्य जंतुमें इतना विनाशक विष है, जो हाथी जैसे महाकाय प्राणीका क्षणमात्र में प्राण हरण कर सकता है । अभी सूना था कि पूरी पृथ्वीकी, जीवसृष्टिकी समाप्ति के लिए, कुछ ग्राम कोरोनाका वायरस पर्याप्त है । वर्षा-ग्रीष्म-वसंत-हेमन्त से नवपल्लवित वसुंधरामें, अनेक रत्न, धातुए, अन्न, रस. औषध के रूपमें जीवनरस की अस्खलित धारा और ऋतुओंका नियमन, असंख्य जीव सृष्टिका पालन-सर्जन-संहार उनके अधीन है । कल्पना करो एक मास सूर्यप्रकाश न मिले तो जीवसृष्टि का क्या होगा । किन्तु, परमात्माकी अहैतुकी कृपा ऐसा नहीं होने देती - यह श्रृंखला अनादि काल से है - यही है परमात्ममाकी शक्तिका दर्शन ।

आदिमध्यान्तहीनाय नारदजी नें उन्हे आदि-मध्य-अन्त रहित कहा है । वे तो सर्वलोक पितामह है । सारे ब्रह्माण्डके पिता ही नहीं पितामह हैं । आकाश की तरह न तो उनका कोई प्रारम्भबिंदु है, न कोई अन्तिम बिंदु । काल की तरह कब शुरूआत होती है और कब अन्त होता है, यह कोई नहीं जानता । उसके प्रारंभ एवं अन्त के मध्यमें ही ज्ञाता,ज्ञान, ज्ञेय सबका लय हो जाता है । अतः वे आदि, मध्य और अन्तसे रहित है। वे सबके पितामह है । कोई ऐसा देश या काल नहीं जहां परमात्माका अस्तित्व न हों । उनके कोई माता पिता नहीं हैं **पिताप्रपितामह – आदिदेवो – महादेव – सर्वेषामादि भूताय** इत्यादि कई जगह पर आता हैं । गीताका विश्वदर्शन योग देखें - **यच्चापि सर्वभूतानां बीजंतदहमर्जुन** । सबका आदि बीज स्वयं परमात्मा ही तो हैं । पूरा ब्रह्माण्ड परमात्मामें है - वेद कहते है - **ॐ खं ब्रह्म** आकाश ब्रह्म है । यदि कोई कह सकता है कि आकाशका माप क्या है - कितेने योजनका है । कहां से आरम्भ होकर, कहां पूरा होता है, इसका मध्य कहां है, ये सब कल्पनातीत है - आदिमध्यान्त रहित है । **यथा हिरण्यं स्वकृतं पुरस्तात्, पश्चाच्च सर्वस्य हिरण्मयस्य । तदेव मध्ये व्यवहार्यमाणं, नानापदेशैरहमस्य तद्वत् -** भाग.१२ स्कंध॥ अलंकार बननेसे पूर्व सोना था, अलंकारमें भी सोना है, अलंकार के पीघलनेपर भी सोना ही शेष रहता है, **सौवर्णाज्जायमानस्य सौवर्णत्वं हि शास्वतम्** सुवर्ण

से उत्पन्न अलंकारमें सर्वत्र सुवर्ण ही है, वैसे ब्रह्मसे उत्त्पन्न ब्रह्माण्डमें सर्वत्र परमात्मा ही है, अनंत है।

आगे कहा है **निर्गुणाय गुणात्मने** । कितनी अद्‌भूत स्तुति है, सत्य के स्वरूप बोधका सुन्दर प्रयत्न है।

निर्गुणाय गुणात्मने भगवान निर्गुण-निराकार है। ईश्वरके गुणका आधार, साधकके दर्शन पर है, दर्शन-सापेक्ष है। वे निर्गुण होते हुए सगुण भी है। **साधकानां हितार्थाय ब्रह्मणोरुप कल्पना** अपने भक्तो के प्रेमवश होकर वे स्वरुप भी लेते है। सारे ब्रह्माण्डों के नायक, समग्र ब्रह्माण्डको क्षणमात्रमें सर्जन और संहार करनेवाले, नटखट नंदकिशोरके रुपमें गोपीजन की प्रेम सभर माखन-मिस्री के लिए नृत्य भी करते है। प्रह्लाद के लिए खम्भे में से नृसिंहावतार धारण करके प्रकट होते है, न तो उस खम्भे में स्नपन हुआ है, न जलाधिवास या गुडाधिवास और न ही उस में प्राण प्रतिष्ठा हुई है, फिर भी **साधकानां हितार्थाय** भक्त के प्रेम को वश होकर साकार भी बनते है। इस प्रकार वे गुणात्मने सगुण भी है। हम सब भी दो स्वरुपवाले है, एक शरीर की स्थुल दृष्टि से साकार है एवं आत्मा - मन - बुध्दि - विचारादि से निराकार भी है। हमारे हाथ-पांवादि दृश्य है, यथा हम साकार है और हमारा मन, हमारे विचार, हमारी भावनाए भी, हमारे एक अंग होने के उपरांत निराकार है - निर्गुण है। हमारा आत्मा भी निराकार ही है, जो हमारे समस्त दृश्य प्रपञ्च का अधिष्ठाता एवं संचालक भी है।

यदि टेबलफेन स्थिर है तो, उसके पंख दिखते है और यदि गति में है तो पंख नहीं दिखते। पंख न दिखनेपर भी पंख तो होते ही है। **वटोबीज कणीकायाम्** बीजमें वृक्ष है, अंडेमें पक्षी है। पृथ्वीसे चन्द्रकी तृतीया-चतुर्थी-पूर्णिमा आदि कलाए दिखती है, लेकिन चन्द्र पर जानेसे ऐसा कुछ नहीं दिखता। भक्त हृदय को भगवान साकार दिखते है, लेकिन वेदांती या योगीको वे निर्गुण-निराकार दिखते है। ट्रेनमें बैठे यात्रीको, वृक्ष दौडते दिखते है,तो वृक्षकी छायामें बैठे हुए, पथिकको ट्रेन गतिमान दीखती है। **दर्शन दृष्टाकी अवस्था का मात्र परिणाम है**। जिस प्रकार काष्ट में अग्नि है, दुधमें घृत है वैसे ही पूरे ब्रह्माण्डमें श्री हरि है, लेकिन ज्ञानी-भक्त उसका दोहन करके उसे पा लेते है, आत्मसात् करते है, इसलिए वे निर्गुण भी है

और सगुण भी है । केवल सगुण या केवल निर्गुण होना पूर्णता नहीं होती । कोई कहे कि वाघ मुद्रा चिन्हित रूपया ही सच्चा हैं, तो पीछेकी और संख्या मुद्रित रूपया गलत हो गया ऐसा नहीं हैं । संख्या व वाघ मुद्रित रूपया ही सच्चा रूपया हैं । निर्गुण एवं सगुण मिलानेपर ही पूर्णत्व सिद्ध होता हैं । रामचरित मानसमें - **सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥ अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥ जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें** ॥ सगुण और निर्गुण में कुछ भी भेद नहीं है । जो निर्गुण, अरूप -निराकार, अलख - अव्यक्त और अजन्मा है,वही भक्तोंके प्रेमवश सगुण हो जाता है। जो निर्गुण है, वही सगुण कैसे है? जैसे जल और ओले में भेद नहीं। दोनों जल ही हैं, ऐसे ही निर्गुण और सगुण एक ही हैं। जो भ्रम रूपी अंधकारके मिटानेके लिए सूर्य है ।

सर्वेषामादिभूताय - प्रथम वृक्ष था बीज - ये अनन्तकाल से चल रही लीला है । जब कोई अतिप्रश्न का प्रत्युत्तर न मिले तो **वेदस्तु अन्त्य प्रमाणम्** वेदको अंतिम प्रमाण नाना जाता है । श्रुति कहती है **यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व । तद् ब्रह्मेति** - तै.उ ३-१-३॥ **अनन्तशक्ति संपन्नो मायोपाधिक ईश्वरः। ईक्षा मात्रेण सृजति विश्वमेतच्चाचरम्** ॥ गीता भी इसे पुष्ट करती है - **तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता।** परमात्मा समग्र ब्रह्माण्ड के पिता है - ये सभी जीव-जन्तु-प्रकृति उनसे ही उत्पन्न होती है और उनमें ही समा जाती है, **यथोर्णनाभि** जैसे मकडे की जाल।

परमात्मा को यह सृष्टि प्रक्रीयाके लिए कोई विशेष आयोनज नहीं करना पडता । उनके संकल्प मात्र से अनन्त ब्रह्माण्डो की रचना हो जाती है । उनकी एक ही निमेष या निश्वास में असंख्य सर्जन-विसर्जनका नर्तन होता है - इसे कहते है - **न तस्य कार्यंकरणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते । परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया -** श्वेत. ६.८॥ **य ईष्टे सर्वैश्वर्यवान्वर्त्तते स ईश्वरः। विशन्ति प्रविष्टानि सर्वाण्या-काशादीनि भूतानि यस्मिन्। यो वाऽऽकाशादिषु सर्वेषुभूतेषु प्रविष्टःस ईश्वरः** - जिसमें आकाशादि सब भूत प्रवेश कर रहे हैं अथवा जो इन में व्याप्त होके प्रविष्ट हो रहा है, वही ईश्वर ।

भक्तानामार्ति नाशिने - आप पुराणेतिहासादि से जान सकते है कि परमात्मा न मात्र भक्तों के दुःख दूर करनेवाला है - वह तो भक्त पराधीन भी है। श्रीमद्भागवत के दुर्वासा-अम्बरीष के चरित्र से सुश्पष्ट होता है - **अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज** ९/४/६३। मैं अपने उन प्यारे भक्तों के अधीन हूं। वह भक्तों के घर सेवक बनकर भी आता है। नरसिंह महेता तो भजनमें लीन हो गए, श्राद्धका समय बीता जा रहा था। स्वयं भगवान नरसिंह महेता बनकर आए और श्राद्ध पूर्ण किया । द्रौपदी के लिए वस्त्रावतार धारण किया तो, प्रह्लाद के लिए अग्नितप्त खंभे से नीकले। तो पांडरंग भक्त के लिए एक ईंट पर खडे हो गए । **माधुर्यादि स्वभावानामन्यत्र स्वगुणार्पितम्** जिस प्रकार शक्कर का गुणधर्म है माधुर्य, जिससे मिलेगी उसे मधुर बना देती है, वैसी हि ये परमात्माकी ये अहैतुकी कृपा है । कभी कभी राधा जैसी भक्त प्रेमिका की चरणसेवा भी करनी पडी, तो कभी मछली-कछुआ-सुअर-बन्दर आदि का रूप भी धारण करना पडा। इसलिए नारदजी ने कहा कि प्रभु आप भक्तो के कष्ट दूर करनेवाले है। अगर भजन या निर्मळ प्रेमके दोहन से हृदय में स्नेहका, मख्खन नीकले तो श्री हरि नंदकिशोर बनके, उसे चखने अवश्य ही आते है । ये परमप्रेमास्पद चोर भी बनते है, रणछोड भी बनते है, सखा भी बनते है।

श्रुत्वास्तोत्र ततोविष्णुर्नारदप्रत्यभाषत ।
-श्री भगवानुवाच -
किमर्थमागतोसित्वं किंते मनसि वर्तते ॥१०॥
कथयस्व महाभाग तत्सर्वं कथयामि ते ।

इस प्रकार श्री नारदजी भगवान के दर्शन होते ही, उस परमानन्द स्वरूप की प्रार्थना करते है। नारदजी की प्रार्थना सुनते ही भगवान ने नारदजी से आनेका कारण पूछा । नारदः प्रत्यभाषत नारदजी ने स्तुति की और भगवान ने तुरंत प्रतिभाव भी दे दिया। लोग कहते है कि हम भगवान को कितना पुकारते है, फिर भी वह हमारी सुनता ही नहीं। यदि उनके अस्तित्वकी स्विकृति हृदयसे आत्मसात् करते है तो, वह तो **तदिहान्तके च** अन्यथा **दूरात्सुदूरे** अतिदूर है। प्रभुमें हमारी श्रद्धा महत्त्वकी है।

एक व्यक्तिने भगवान विष्णुकी वर्षो पर्यन्त आराधना की, अर्चन किया, भोग लगया, दीप बताया, धूप दिखाया, किन्तु, भगवानने प्रत्यक्ष आकर ग्रहण नहीं किया, तब उसने बाजुमें शिवजी का विग्रह स्थापित किया और विष्णुकी नाकमें रूई लगादि, आंखोपर पट्टी बांध दी, क्योंकि अब वह दिपक, भोग या धूप ग्रहण न कर सकें । अब एक बडा चमत्कार हुआ, विष्णुके विग्रह से एक दिव्यतेज प्रकट होकर, धूप-दीप-नैवेद्य ग्रहण करने लगा । भक्त को बडा विस्मय हुआ, भगवानकी तरफ आश्चर्यमुग्ध होकर देखने लगा, तब परमात्माने उसे अन्तःकरणमें समाधान दिया कि, जब तुनें मेरे आंख-नाक-कान बंद किया, इससे ज्ञात हुआ कि, तुनें मेरे अस्तित्वका स्वीकार किया है । सूनाने के लिए कोई सामने होना तो चाहिए, जब परमात्मा सामने ही है और सुन रहे है, ऐसा विश्वास होता है तब हि वे सूनते है ।

प्रहलादके लिए विष्णुलोकसे आकर खंभेमें बैठ गए, गजेन्द्र के लिए गरूड पर बैठकर आ गए तो, द्रौपदीके लिए, भगवान (द्वारकासे) वस्त्रावतार बनकर आ गए । भगवान प्रेमकी भाषा सूनते है । जो परमात्मा के सातत्य को श्रध्दा से स्वीकारता है उसे सर्वत्र परमात्मा दिखता है । एक बालक अपनी मस्तीमें खेलता है और खेलते खेलते यूहीं माँ-माँ पुकारता है । वह खिलौने के साथ खेल रहा है और उसका सम्पूर्ण ध्यान भी मां के प्रति नहीं है । फिर भी मां अपने बच्चे के इस चरित्र से अति प्रसन्न है,भले ही वह अपने बच्चे को प्रत्युत्तर दे या न दे । अगर बच्चा सब खिलौनोको छोडकर, अपना सम्पूर्ण ध्यान मां की और लगाकर, मा को पुकारेगा तो उसकी एक या दो पुकार सूनतें ही, भले कितनी ही व्यस्त होगी, दौडकर आयेगी और बच्चे को सीनेसे लगा लेगी । ठीक इसी प्रकार यदि कोई संसार की सब प्रवृत्तियों से मुक्त होकर परमात्मा को सच्चे अंतःकरण से पुकारें तो उसे परमात्मा अवश्य प्रतिभाव देता है । अजामिलने एक ही बार **नारायण**को पुकारा और विष्णुके पार्षद आ गये । भगवान तो अत्यन्त करुणासागर है ।

श्री भगवानुवाच - भगवान ने नारदजी को आनेका कारण पूछा ।

किमर्थमागतोसित्वं किं ते मनसि वर्तते? हे नारदजी! आपका यहां आनेका प्रयोजन क्या है? यहां भगवानके सर्वान्तर्यामी होनेपर संशय होता है । **यदि परमात्मा सर्वान्तर्यामी है तो, नारदजी को प्रश्न क्यों करते है**?

यहां इसके दो कारण है । एक तो परमात्मा अन्तर्यामी है और उन्हें नारद के मनकी बात का पता चल चुका है । वैसे कई बार वे विष्णुलोक जाते है तब भगवान उनको आनेका कारण नहीं पूछते । इसबार ही पूछा है । अतः भगवान ने उनके हृदय की बात जान ली है, कि इस बार नारद सप्रयोजन आयें हैं और वे उनके द्वारा ही उनका प्रयोजन स्पष्ट कराना चाहते है । प्रश्नकर्ता अपने प्रश्न के प्रति सजग है भी या नहीं अथवा प्रश्न के लिए वह सुस्पष्ट है भी या नहीं वह जानना अत्यावश्यक है ।

नारदजी भगवान के पास दुःखोंका उपाय पूछने गए है । आगे जो वर्णन किया है, इसके अनुसार भगवान महावैद्य है । वैद्य भी जानता है कि, मेरे पास रोगी रोग निवारणार्थ आया है - रोग के चिन्ह तो मुख से या आपके शरीर से स्पष्ट हो ही जाते है, आपका देखाव और हालचाल से बोलती व्यथा, वैद्य सून लेते है । फिर भी वह नाडी पकड कर रोग को भी पकड लेता है, निदान भी बता देता है । तथापि हमे बोलते है, वैद्यजी हमें तीन दिवससे ज्वर है ।

संकल्पः स्वयमेव प्रजायते । वर्धते स्वयमेवाशु दुःखाय न सुखाय यत्, महोपनिषद्। जब हम कोई कामनाके लिए संकल्प नहीं करते है, तब साधनाके दरम्यान कई समस्याए आती है और हमारे संकल्प बदलते रहते है, यथा संकल्प का विधान विधिके प्रारम्भमें ही आता है ।

संकल्प करनेका काम मनका है, वह बडा चञ्चल है । एक संकल्प पूरे हुए बीना कई संकल्प कर लेता है - वह विकल्प भी उत्पन्न करता रहता है । धंधा व्यवसायमें विघ्न निवृत्ति लिए संकल्पपूर्वक अनुष्ठान करते है, अनुष्ठान दरम्यान लडकी के लिए कोई सम्बन्ध ध्यानमें आ जाता है तो, अनुष्ठानमें इस कार्यपूर्तिका संकल्प भी जूड जाता है और फल विभाजित हो जाता है, कार्यपूर्ण सम्पन्न नही होता । यथा विधिमें विधिवत् संकल्प

को पुरोहित दोहराते है । संकल्पमें, हम कहां है, कौन है, क्या कामना है, इसकी पूर्तिके लिए क्या करना है इत्यादि ।

दूसरा कारण यह हैं, कि शास्त्रमे कहा है, कि **नापृषटः कस्यचिद् ब्रुयान्नचान्यायेन पृच्छतः, जानन्नपि हि मेधावी जड वल्लोकमाचरेत्** अतः जबतक कोई पूछता नहीं तबतक ज्ञानचर्चा नहीं करनी चाहिए। पूछनेवाले के मन की जिज्ञासावृति को ध्यानमें रखकर ही उपदेश करना चाहिए अन्यथा उपदेशकी असरकारकता नहीं रहती ।

जिस व्यक्ति ने प्रश्न पूछा है, वह अपने प्रश्न के प्रति सजग होना चाहिए । अन्यथा ज्ञानचर्चा या उपदेश सर्व सामान्य हो जाता है । यदि कोई शिक्षक सब विद्यार्थीयों को या कोई संत जनसामान्य को कोई बात बताते है, तो उसका असर बहुत ही कम होता है, लेकिन वही बात किसी एक विद्यार्थी या व्यक्ति को कही जाय, तो उसका असर, उस व्यक्ति या विद्यार्थी के विशेष महत्ववकी बन जाती है । श्रोता या शिष्य को अपने संकल्प पर सुनिश्चित करनेका प्रयास है, अन्यथा मनमें अनेकों संकल्प-विकल्प उठते ही रहते है । प्रशस्तिके लिए दिशा भी सुनिश्चत होनी चाहिए ।

पूछनेवालेके हृदयमें, शिष्यभाव, नम्रता, जिज्ञासा आदि होना अत्यावश्यक है । एक राजाको जादूके खेल सिखने का बहूत उत्साह हुआ । उसने एक अच्छे जादूगरको निमंत्रित करके जादू - मस्मेरिझम विद्या शिखने का प्रारंभ किया । जादूगर जानता था कि महाराज के लिए यह सिखना पूर्णतया असंभव हैं यद्यपि वह उन्हें मना भी नहीं कर सकता था । उसने राजा को सनम्र एक प्रस्ताव सुनाया की वह जादू तो सिखाएगा लेकिन साथ में कोई और भी होना चाहिए । राजा ने उनके प्रस्ताव को स्वीकृत करते हुए अपने एक मंत्री के साथ विद्या प्रारम्भ किया । कुछ काल व्यतीत होते ही जादूगर ने कहा महाराज मेरे पास जो भी विद्यापूंजी थी आपको दे दी है, अब आप मुझे जाने की आज्ञा दें । राजा ने कहा की अभी तो मैं कुछ सिखा ही नहीं । जादूगर बोला महाराज आपको और आपके मंत्रीजी को साथ साथ ही मैने यह विद्या सिखाई है और वें तो पूर्णतया निपूण होए है । राजा ने परिक्षा ली, तो वास्तवमें मंत्री जादू कर सकता था । राजा ने जब विद्योपार्जनके भेदका कारण पूछा, तो जादूगरनें सनम्र कहां, कि

महाराज जब, मैं शिक्षा देता था, तब आपके मंत्री तो मुढसे नीचे बैठकर, मेरे शिष्य बनकर सिखते थे । लेकिन, आप तो सिंहासन पर बिराजमान होकर, महाराज ही बने रहते थे । यथा मन-बुध्दि एवं अहंकार को भी वक्ता को समर्पित करना पडता है ।

शास्त्र कहता है, जिसे कुछ सिखना है, उसको, स्वयंको, श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठके श्रीचरणों में समर्पित करना पडता है । जिसमें शिष्यभाव न हो, उसको उपदेश न करनेकी बात श्रुतिसम्मत है - **स गुरूमेवाभिगच्छेत् - श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् - अशिष्यायाविरक्ताय यत्किंचिदुपदिश्यते, तत्प्रयात्य पवित्रत्वं गोक्षीरंश्वद्रतौ यथा** । यदि अपात्रको उपदेश किया हो तो, गाय का दोहन करके, कुत्तेको पीलाने जैसा होता है । यहां, नारदजीने प्रथम भगवानकी स्तुति की है, तदनन्तर प्रश्न किया है । नारदजीने अपना शिष्यभाव सिध्द किया है, और श्री हरि उन्हें सदुपदेश करते है ।

कथयस्व महाभाग तत्सर्वं कथयामि ते - भगवान कहते है कथयस्व महाभाग तत्सर्वं कथयामि ते कहनेका तो कोई अन्त नहीं होता । कितना भी जानो, कुछ तो जानना बाकी-शेष रह जाता ही है । शब्दजालं महारण्यं चित्त भ्रमण कारणम्, अतः प्रयत्नाज्ज्ञातव्यं तत्व ज्ञात्तत्वमात्मनः शब्दजाल तो चित्त को भटकानेवाला महारण्य है । यथा जा श्रेयष्कर है, वो ही बात करनी चाहिए । भगवान कहते है तुमको जो कोई संशय है, वो बताओ ।

जिसे स्वयं भगवान **महाभाग** कहते है उससे ज्यादा भाग्यशाली कौन हो सकता है । नारदजी एक ऐसे योगी-भक्त है जो जब चाहे जहां भी जा सकते है । उनको किसी की अनुमति की आवश्यकता नहीं है । उन को अपना परिचय पत्र या विजीटींग कार्ड भेजनेकी आवश्यकता नहीं । उनको सब जानते है । जिस नारायण के दर्शन के लिए बडे-बडे योगी तरसते है, जिस लक्ष्मीपतिकी कृपाके लिए करोडोंपतियोंको भी यज्ञानुष्ठान कराने पडते है, उसके पास वह जब चाहे जा सकते है । कभी कभी तो स्वयं देवता भी नारदजीको ढूंढते है इसलिए वें महा भाग्यशाली तो है ही ।

प्रभु नारदजी के मन का सम्पूर्ण समाधान करनेके लिए तैयार है, **तत्सर्वं कथयामि ते** मैं, तेरी प्रत्येक बातका समाधान दूंगा । अब तो मानना ही

पडेगा कि नारदजी से ज्यादा भाग्यशाली कदाचित् पूरे ब्रह्माण्डमें कोई नहीं हो सकता।

- नारद उवाच -

मर्त्यलोकेजनाःसर्वे नानाक्लेशसमन्विता।
नानायोनिसमुत्पन्ना पच्यन्ते पापकर्मभिः॥११॥

नारद उवाच - नारदजी बहुत बध्दिमान भी है। वे अपने प्रश्न को अति सुस्पष्ट एवं संक्षिप्त रीत से पूछते है। भगवानकी अमुल्य उपलब्धिके प्रति पूर्णतया सजग है। वे व्यर्थ गपसप करने नहीं आये है। कुछ लोगो को कहां क्या बात करनी चाहिए उसका ध्यान नहीं रहता।

मर्त्यलोके जनाः सर्वे नाना क्लेश समन्विताः - नारदजी तो एक ही पदमें **मर्त्यलोके जनाः सर्वे नाना क्लेश समन्विताः** बोलकर कह देते है, कि, भगवन्, मैं तो आपसे, पृथ्वीलोक के, दुःख संतप्त लोगोंकी, बात करने आया हुं। जिसे प्रश्न करते है, वह भी सब का स्वामी है, अन्तर्यामी है। पृथ्वीलोक पर लोग नाना प्रकार की व्याधियों से पीडित है, उनकी पीडा का कारण भी मैं जानता हुं। उनके पास निदान हैं। केवल उपाय ही चाहिए। **नानायोनि समुत्पन्ना पच्यन्ते पाप कर्मभिः** वें अपने जन्मान्तरों के पाप कर्मो के कारण पीडित है। तथापि, ये दुःख कैसे आते है, कितने प्रकार के है, कहां से आते है, क्यों आते है, इत्यादि की चर्चा आगे सविस्तर कर चूके है।

नारदजीको, कोई दुःख या रोग नहीं है। किन्तु, अन्यके, दुखोंको दूर करनेका उपाय पूछते है, परमहितकारी है।

तत्कथं शमयेन्नाथ लधुपायेन तद्वद।
श्रोतृमिच्छामि तत्सर्वं कृपास्ति यदि ते मयि॥ १२॥

तत्कथं शमयेन्नाथ - हे करूणानिधान! मुझे उनके कष्ट निवारण का उपाय जानना है। उनके कष्ट शांत हो जाय ऐसा उपाय चाहिए। उनके कष्टों का शमन हो। यहां कष्ट दूर भगाने की बात नहीं पूछी है। उनका शमन -

सहनक्षम बनानेकी बात पूछी है । **नाभुक्तं क्षीयतेकर्म कल्पकोटि शतैरपि । जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरुपेण बाधते, तच्छांतिरौषधैर्दीपैर्जप होमा र्चनादिभि**: जन्मांन्तर के पापकर्म मनुष्य को नाना प्रकार की व्याधि के रुप में पीडा देते हैं । **होगा वही जो राम रूचि राखा - सुनहुं भरत भावी प्रबल** प्रारब्ध कर्म तो भोगने ही पडेंगे । कोई वैद्य बीना औषध व्याधि नहीं निकाल सकता ।

अवश्यम्भावीभावानां प्रतिकारो भवेत् यदि । तदादुःखैर्नलिप्येरन्नल राम युधिष्ठिराः। जो अवश्यम्भावी है, उसका प्रतिकार नहीं होता। यदि ऐसा होता, तो नल, राम और युधिष्ठिर इतना कष्ट नहीं पाते । राम, कृष्णादि परमात्मा के अवतारों को भी कभी श्राप तो कभी विधिका ताप सहना ही पडा है । आगे भी इसकी सविस्तर चर्चा कर चूके है । हम जो भोग रहे है, वह हमारे प्रारब्ध बने कर्म है - इसे मिटा नहीं सकते यद्यपि नए कर्मोको हम जरूर रोक सकते है - नए प्रारब्धकी दिशा बनानेमें हम स्वतंत्र है । पंचम श्लोक में यह चर्चा सविस्तर हो चूकी है । **सतिमूले तद्विपाको जात्यायुर्भोग: - ते ह्लादपरितापफला: पुण्यापुण्यहेतुत्वात् पा.योग २.१३-१४ ।** जन्म, जाति, आयु इत्यादि का आधार कर्मो-पूर्वकृत कर्मो पर होता है । जब कर्मोको प्रारब्धके रूपमें भोगना ही है तो, ये उपायवाली बात कुछ युक्तिपूर्ण नहीं लगती । **स्थूलानि सूक्ष्माणि बहूनि चैव रूपाणिदेही स्वगुणैर्वृणोति । क्रियागुणैरात्मगुणैश्च तेषां संयोगहेतु रपरोऽपि दृष्टः** श्वेता.उप. ५-१२ जीवात्मा अपने अर्जित कर्मसंस्कारोके अधीन अनेक योनिमें जन्म लेता हैं ।

चतुरशीतिलक्षाणि चतुर्भेदाश्च जन्तवः । अण्डजाः स्वेदजाश्चैव उद्भिज्जाश्च जरायुजाः॥ सर्व्वेषामेवजन्तूनां मानुषत्वंसुदुर्लभम् - ग.पु. **॥ जलजा नव लक्षाणि स्थावरा लक्षविंशतिः । कृमयो रुद्रसङ्ख्याकाः पक्षिणां दशलक्षकम् ॥ त्रिंशल्लक्षाणि पशवश्चतुर्लक्षाणि मानुषाः । सर्व्वयोनिं परित्यज्य ब्रह्मयोनिं ततोऽभ्यगात् ॥ बृहद्विष्णुपुराणम् इति चरकेऽपि ॥** हमारे शास्त्रों के हिसाब से कुल ८४ लाख योनियां है, जिसमें चार प्रकार है - अंडज (अंडे के रूपमें जन्म लेना), स्वेदज (पसीने-मल-मूत्रोत्सर्जन से कीटादि के रूपमें जन्म लेना), उद्भिज (जमीन से वृक्ष-घासादि बनकर

नीकलना) एवं योनिज (माता की योनिसे जन्म लेना) । इन चार प्रकार में ८४ लाख योनियां आ जाति है - जलचर जीव ९ लाख, स्थावर जीव(पत्थर-धातु इत्यादि) २० लाख, कीट-कृमि आदि ११ लाख, पक्षी-खेचर १० लाख, ३० लाख पशु (द्वि-त्रि-चतुष्पाद), ४ लाख मर्कट,वानरादि सहित मानव जन्म मिलता है । अनेक योनियोंमें पापकर्म भोगते-भोगते, जब पापक्षय हो जाता है तब मानव जन्म रूपी अंतिम मुकाम मिलता है । ८४ लाख योनियां और उनमें आयुष्य काल की गणना करों तो करोडो वर्षोमें पहुच जाएगी । यह जो मानव जन्म है वह सामान्यतया ७०-८० वर्षका मानकर चलते है । अब देखों करडो वर्षोकी आयु यात्रामें यह मानवायु कितनी कम है - प्रायः प्रतिशत नीकालना भी कठीन है - जब हमारे पास समय अतिकम हो तो लघूपाय हि सोचना पडेगा, यथा यहां लघु उपाय की बात का प्रस्ताव नारदजीने बताया है ।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिध्दये गीता ॥ दीर्घकालीन व्रत-तपादि से संचित पुण्य से ही आत्मकल्याणकी उत्कण्ठा होती है । अन्धेरी कोठरी में अन्धा व्यक्ति दिवालों को श्पर्श करके बहार नीकलने का मार्ग ढूँढ रहा हो और द्वार तक पहोंचते ही उसको खुजली आए और दिवाल से हाथ छूट जाए तो द्वार कैसे मिलेगा ? उसको पुन: यात्रा शरू करनी पडेगी । ठीक इसी प्रकार जन्मान्तरोंके चक्करमें, मानवजन्म रूपी मुक्ति का द्वार तो मिला है, किन्तु हम भौतिक सुख की लालसामें अन्धे हुए है । कुछ पुराणादि या सत्संग का योग भी मिलता है, लेकिन भौतिक सुखासक्ति रूप खुजली में यह द्वार हाथ से नीकल जाता है और फिस से जन्ममरण के चक्कर का प्रारम्भ हो जाता है ।

लघुपायेन तद्वद - अनन्त कल्पोसे हम **पुनरपि जननं, पुनरपि मरणं, पुनरपि जननि जठरे शयनम्** करते आए है, अनन्तकाल से जीवनयात्रा का प्रारम्भ हुआ है । असंख्य योनियां रूपी मुकाम, हम पार कर चूके है और हमारे कई जन्मोंके संस्कार हमारे साथ चलते है, तभी तो हम पूर्वकी स्मृति अनुसार स्वयं ही स्तनपान कर लेते है - कोई सिखाता नहीं, अनेक जन्मोंसे हमने यह सिखा है, वैसे ही कामादि प्रवृत्तियां स्वाभाविक हि आ जाती है । अच्छे-बुरे स्वभाव, हमारी पूर्व की कमाई है । कई जन्मों की

संस्कार-स्मृतिया हम लेकर चलते है । एक हि पिता के दो भाई में कोई डॉक्टर बनता है तो एक कवि । यहीं पांच अंगूलियों से एक अच्छे चित्र बनाता है को दूसरा संगीत ।

दूसरी बात, ये जो मानव जन्म है, वह जन्मान्तरोंमें हुए, पापक्षयके बाद, मिला पुरस्कार है - **भाग्योदयेन बहुजन्मसमर्जितेन** - श्रीमद्भागवत । अनेक जन्मोका अर्जित पुण्यफलका परिणाम है । अति दुर्लभ है मानव जन्म - **दुर्लभंत्रयमेषैतद्देवानुग्रह हेतुकम् । मनुष्यत्वं मुमुक्षत्वं महापुरुषसंश्रयः ॥** वैसे तो सभी योनियोंमे फल स्वातंत्र्य नहीं है - **कर्मण्येवाऽधकारस्ते मा फलेषु कदाचन** - गीता । हमारा अधिकार मात्र कर्म में है, फल ईश्वराधीन-प्रारब्धाधीन है, यद्यपि आगमी फल या प्रारब्ध निर्माण यहां हम कर्मके द्वारा करनेमें स्वतंत्र है । मानव जन्ममें कर्म स्वातंत्र्य है, जो अन्य योनियों में नहीं है । कोई बैल ऐसा नहीं बोल सकता की आज मै खेत जोतने नहीं जाउंगा, गधा ऐसा नही बोल सकता की मै भार नहीं उठाउंगा । या कुत्ते को जो मिले वो हि खाना पडता है - वह नहीं बोल सकता कि, मुझे आज खानेमें, हलवा ही चाहिए । पशुयोनि में न तो फल स्वातंत्र्य है, न हि कर्म स्वातंत्र्य । वे केवल भोग योनियां है । इसलिए मानव योनि अति दुर्लभ बताई है । मानव एवं पशुमें एक तफावत है ।

पशु क्या है - **पश्यतेबध्यते (कर्मपाशैर्वा इन्द्रियप्रपञ्चैबद्धः) यैस्ते पाशाः, पाशः पश्यते बध्यते अनेनेति, पश् वन्धने पश्यते बघ्यते इन्द्रिय॥** जो कर्मपाश से बंध है वे पशु है, जिसे कर्म स्वातंत्र्य नही है, बंधन है । **पूर्ब्बकर्म्मनिबद्धोऽपि सर्व्वयोनिषु नित्यशः । कूटस्थः पशुतां याति आत्मज्ञानविवर्जितः ॥** आत्मज्ञान के बीना मनुष्य पशु ही है ।

आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्। वैसे तो, आहार-उदरपूर्ति पशु भी करते है, मानव भी करते है । वैसे हि निद्रा भी करते है । भय भी पशुको भी लगता है, हमें भी लगता है । मैथुनादि क्रिया भी, पशु भी करते है, मानव भी करते है । यद्यपि हमारे एवं पशु के बीच में एक जो महत्त्वका तफावत है, वह यह कि, उन्हें कर्म स्वातंत्र्य नहीं है, हम ज्ञानार्जन कर सकते है, वेद शास्त्रादि का श्रवण, उपासना कर सकते है,

कर्म करते हुए, कर्मवासना का त्याग कर सकते है, जो अन्य योनियोंमें शक्य नहीं है। उपाय करना है, तो मानवयोनिमें ही हो पाएगा।

ॐ केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः। केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति । केन ॥ किससे है प्रेरित प्राण वाणी, ज्ञानेंद्रियाँ, कर्मेंद्रियाँ, है कौन मनका नियुक्ति कर्ता, कौन संपादक, अति प्रथम प्राण का कौन प्रेरक है, वाणीका स्फुरण कहां से होता है, यह मुक्तिप्रद जज्ञासा या प्रश्न, केवल मानव योनि में हि संभवित है। यथा कहा है कि, **दुर्लभो मानवो देहः** ।

यद्यपि, जैसे आगे बता चूके है कि, ८४ लाख योनियोंके लाखों वर्षोंके आयुष्य की अपेक्षा, यहां मानव जन्ममें आयुष्य अति अल्प है, शास्त्र अगणित है, पथ अति लम्बा है। लक्ष्य भी दुष्कर है। ब्रह्मानुभूते करे तो कैसे करे-वहां मन-वाणी-ईन्द्रिया-बुद्धि आदि का सामर्थ्य भी कम पड जाता है। **इसलिए नारदजीको लघु उपाय चाहिए**।

अनन्तशास्त्रं बहुवेदितव्यमल्पश्च कालो बहवश्चविद्या, यत्सारभूतं तदूपासितव्यं हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमिश्रम् हमारी संस्कृति में देखो कितना समृध्द साहित्य है। चार वेद, उपवेद, अष्टादश पुराण, उपपुराण, ईतिहास, शास्त्र, दर्शन और इनके उपर असंख्य भाष्य। पढने के लिए सो साल की उम्र भी कम पड जाय। क्वचित ही विश्व की कोई संस्कृति इतनी समृध्द होगी। इन सभी शास्त्रो में परमात्म तत्व वर्णीत है। खूब वर्णन है। जीवनकाल अति सीमित है। यह अल्पकालीन जीवन में सत्व, श्रेय ग्रहण करना ही उत्तम है, जिस प्रकार हंस, दुध एवं पानीमें से, केवल दुध ही ग्रहण करता है, पानी त्याग देता है।

स्वल्पोपि दीप कणिका नाशयेत्तिमिरम्महत् छोटा सा दिपक भी बहूत अंधकार को दूर करता हैं, वैसे हि एक लघु उपाय, यदि, सारे मनोरथ दूर कर दे, तो अच्छा ही है। कितनी चातुर्यपूर्ण बात पूछी है नारदजी ने।

अंधकारमें चलना हैं - लम्बा मार्ग हैं। साधनमें केवल, एक छोटी सी बेटरी-टॉर्च हैं, जो पूरा मार्ग तो प्रकाशित नहीं कर सकती, यद्यपि, जितना मार्ग प्रकाशित करती है, उतना चलेंगे तो टॉर्चका प्रकाश भी आगे-आगे

बढता जाएगा और अंधकारमय पथ प्रकाशित होता जाएगा । **लघुउपाय** की बात पूर्णरूप से तार्किक हैं । आगे निःश्रेयस का मार्ग स्वतः पशस्त होता जाएगा ।

एकबार शंकर भगवान ने, अपने दोनों पुत्र कार्तिकस्वामी एवं गणेशजी को बुलाकर कहा कि, पूरे ब्रह्माण्ड की प्रदक्षिणा करो । आदेश पाते ही कार्तिकजी तो अपने वाहन मयूरपर सवार होकर निकल पडे । गणेशजी सोचने लगे कि मेरा इतना भारी शरीर और वाहन में मूषक, मैं तो कब यह यात्रा पूरी कर पाउँगा? कुछ **लघु उपाय** सोचना चाहिए । **सर्वतीर्थमयि माता सर्वदेवमयः पिता तयोसंपूजनान्नित्यं देवीदेवश्च पूजितौ** माता पिता के श्रीचरणों में ही पूरा ब्रह्माण्ड है । उन्होंने मातापिताको प्रणाम करके, उनकी प्रदक्षिणा से, पूरे ब्रह्माण्ड की प्रदिक्षिण कर ली और माता - पिता से वरदान प्राप्त किया । जब ऐसे लधु उपाय से कार्य सिध्दि हो सकती है तो, क्यों लम्बा चलना । यही है लघूपाय ।

नारदजी कहते है कि, हे प्रभु, मैने पूछ तो लिया है, यद्यपि आपको उचित लगे तो बताए, **कृपास्ति यदि ते मयि** ।

श्रीभगवानुवाच – श्री भगवान बोले ।

साधुपृष्टंत्वयावत्स परानुग्रहकांक्षया ।
यत्कृत्वा मुच्यतेमोहात्तच्छ्रुणुष्व वदामिते ॥१३॥

भगवान कहते है कि **साधुपृष्टं त्वया वत्स परानुग्रहकांक्षया** नारदजी आपका प्रश्न उत्तम है, आप मेरे प्रिय भी है क्योंकि आप सच्चे अर्थमें एक उत्तम साधु है, निःस्वार्थी है - **निर्मल मन जन सो मोहि पावा, मोहि कपट छल छिद्र न भावा।** **परानुग्रहकांक्षया** मुझसे जो, पर है, उन्हें मेरे समीप लानेका उपाय पूछा है । जो ईश्वर से पर-अलग है, विभक्त है उनपर मेरा अनुग्रह हो ऐसी उदात्त भावना आपके हृदय में है । यह तो मेरे हित की ही बात है, मेरे बिछडें हुए संतानों को मुझसे मिलाने का उपाय ही आपने पूछा है । आपने परोपकार की भावना से पूछा है । नारदजीने अपने लिए

कुछ नही पूछा या मांगा । मैं तुझे एक ऐसा उपाय बताता हुं, जिससे समग्र मोहपाशोंसे मुक्ति मिलती है । तुं यह उपाय सावधान होकर सूनिए ।

यहां भगवानने **मुच्यते मोहात्** मोह पाश से मुक्ति की बात कहीं, जो कहीं प्रश्नमें है ही नहीं । यद्यपि जितने दुःख है उनके मूलमे मोहपाश, कर्मासक्ति या कर्मवासनना ही मूल है । मोह याने ममत्व, मेरापन जो अहंकार से उत्पन्न होता है । **ममत्वेन स्नेहेन आकृष्टा मतिर्यस्य ममेति - ममत्वम् ।** इस ममत्वपर आगे ६ श्लोक में बात कर चूके है । वैसे ही, पुत्रकी दुकानमें आग लगनेपर पिता रोता है, तब कोई उसके समीप आकर कहता है - आप शोक न करें, ये दुकान अब आपकी नहीं है, आपके पुत्रने अच्छे दाम लेकर बेच दी है । शीघ्र ही वह स्वस्थ हो जाता है । देखो, दुकान तो अब भी आग में जल रही है - शोक किसका ? दुकान का या दुकानमें बसे ममत्व-आसक्ति का? ये ममत्व-आसक्ति, ही दुःखोका कारण-आयतन है । यह एक भवरोग है । जब दो वकील बात करते है, तो अपनी वकालत की, कानूनी कलमवाली बोली बोलते है । यहां श्रोता भी श्रेष्ठ ज्ञानी है, यथा उसे मूल बात - सीधी ही बता देते है, मोहनिवृत्ति के माध्यमसे शोक एवं क्लेश निवृत्तिकी ।

व्रतमस्ति महत्पुण्यं स्वर्गेमर्त्ये च दुर्लभम् ।
तवस्नेहान्मयावत्स प्रकाशः क्रियतेधुना ॥१४॥

भगवान बताते है, **व्रतमस्ति महत्पुण्यं स्वर्गेमर्त्ये च दुर्लभम्** ये जो व्रत है, वह अतिपुण्य प्रदान करनेवाला है, इतना ही नहीं स्वर्ग में या मृत्युलोक में अति दुर्लभ है । स्वर्गलोक में तो देवता अपना पुण्यभोग कर रहे है, यथा वहां उन्हें व्रत, जप, तप में कैसे उत्साह होगा । बात रही मृत्युलोक की, तो मृत्युलोक के लोगों के लिए तो, अभी हि व्रत बता रहा हुं और वहां भी लोग ज्यादातर भोगपरायण एवं देहासक्तिवाले है । इतनी योनियांसे भटक-भटक कर आने के बाद, कम लोग, शास्त्रोक्त बातों में, विश्वास करके, मोक्षकी चिन्ता करते है ।

उपाय अति दुर्लभ कहा है । डॉक्टर, आदमीके हृदयकी, बायपास सर्जरी कर सकता है, लेकिन हृदयस्थ भावनाको नहीं बदल सकता, आदमीके

मष्तिष्क का कोई भाग बदल सकता है, लेकिन युगान्तरोंमें भी उसके विचारोंको नहीं बदल सकेगा। यह काम तो केवल सत्संग और व्रतोपासना ही कर सकते है, जो सरल है, **लघु उपाय** भी है और **दुर्लभ** इसलिए है कि, सद्गुरू बडी मुश्किल से मिलते है।

जब राजा श्री परिक्षित के लिए, श्री शुकदेवजी महाराज कथामृत का पान कराने जा रहे थे, तब, स्वर्गसे देवता आयें और कथा केवल उन्हे ही सुनायें और बदले में वे श्री परिक्षितको, अमृत देंगे ऐसा प्रस्ताव रक्खा। उन्होंने कहा कि, इस अमृत कलशसे परिक्षित राजा अमर हो जायेंगे। यद्यपि, परिक्षित राजाको अमृतसे प्राप्त होनेवाला दीर्घायुष्य नहीं बल्कि कथासे प्राप्त होनेवाला दिव्यायुष्य चाहिए, फिर चाहे वह जीवन ७ दिवसका हि क्यों न हो।

तवस्नेहान्मयावत्स प्रकाशः क्रियतेधुना ये जो व्रत है वह मै (स्वयं) तुझे बताता हुं। यहां स्वयं भगवान ने, नारदजी के लिए **वत्स** शब्द का प्रयोग किया है। जिसके पर वात्सल्य उभर आता है, उसके लिए, वत्स संबोधन होता है। भगवान को नारदजी पर अतिस्नेह है और इसविए बीना विलम्ब तुरन्त ही उसे व्रत बताते है। देखो कृपा भी योग्यताके आधार पर होती है, **शक्तिपातानुसारेण शिष्योनुग्रहमर्हति।** शिवपुराणानुसार **अनुग्रह प्रकारस्य क्रमोयमविवक्षतः** योग्यताके आधारपर ही, इस ब्रह्मबोध या सदुपदेश प्राप्त होता है। जो आज्ञांकित या निष्ठावान् शिष्य है उसपर गुरूकृपा सविशेष रहती है।

सत्यनारायणस्यैव व्रतं सम्यग्विधानतः।
कृत्वा सद्यःसुखं भुक्त्वा परमंमोक्षमाप्नुयात्॥१५॥

सत्यनारायस्यैव व्रतं सम्यग्विधानतः भगवानने स्वयं सत्यनारायणका व्रतोपदेश एवं (सम्यक्) विधिविधान बताया है।

परमात्मा स्वयं ही, अपने पूजा-अर्चनाकी बात करे तो हमें संशय हो सकता है कि, क्या **परमात्मा आप्तकाम नहीं है**। चलो, प्रथम परमात्मके आप्तकामत्वकी बात करते है।

एक बात, आगे सिद्ध किया है, कि इन समस्त ब्रह्माण्डोका जनक इश्वर है । एक पिता अपने पुत्रको बडे-बुजुर्गों को पांव छूना सिखाता है, इसमे उसका कौन-सा स्वार्थ है । पुत्रके कल्याण एवं संस्कार सिञ्चनकी बात होती है । पुत्र के पैर न छूनेसे पिता छोटा तो नहीं हो जाता या पैर छूनेपर बडा भी नही बन जाता । यह व्रत अति दुर्लभ होनेके उपरान्त, शीघ्र फल देनेवाला एवं अति लघू उपाय है ।

दूसरी बात, परमात्मा के भजन यजन से हमारा ही कल्याण होता है । वैद्य दवा देता है या पथ्यापथ्य बताता है, तो उसमे रोगीका ही कल्याण है । **अगुन अरूप अलख अज जोई । भगतप्रेम बस सगुन सो होई -** रा.च.मा॥

नैवात्मनः प्रभुरयं निजलाभपूर्णो मानेजनादविदुषः करूणोवृणीते । यद्यज्जनों भगवते व्यदधीतमानं तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथामुखश्रीः - भागवत् ॥ हम दर्पणमें देखकर श्रृंगार करते है, तो शोभा किसकी बढती है, हमारी या दर्पण की ? परमात्मा उपासना या व्रत से हमारा ही कल्याण होता है । परमात्मा तो आप्तकाम है । भगवान को अपने भक्त इतने प्रिय है कि, वे स्वयं कहते है - **अहं भक्त पराधीनो** भक्तोके प्रेम के आगे मै पराधीन हुं । जिस प्रकार, बछडा कितना भी गंदा हो, गायके समीप जाते ही गाय उसे चाटती है । कोई पिता अपने पुत्र के लिए घोडा भी बनता है, हाथी भी बनता है, परमात्मा तो परमपिता है, कारूण्यकी मूर्ति है । विशेष चर्चा भाग-२ में है ।

कृत्वा सद्यःसुखं भुक्त्वा परमंमोक्षमाप्नुयात् – यहां एक बात पहले से ही सुस्पष्ट कर दी है कि, यह व्रत करनेसे तुरन्त ही सुख तो मिलता है, किन्तु मोक्ष तुरन्त नहीं मिलता । **अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् । ना भुक्तं क्षीयते कर्म कल्प कोटि शतैरपि॥** कर्मफल छोडता नहीं है ।

मानों कि किसीके घरमें प्याज-लहसुन की रसोई बनी है, पूरे घरमें इसकी दुर्गंध फैल गई है । अब अचानक हि कोई, महेमान आनेका समाचार मिलता है, तो हम रूमस्प्रे छिटकर, कुछ कालके लिए दुर्गंध को सुगंधमें परिवर्तित कर सकते है, यद्यपि स्पेकी असर दूर होते ही, पुनः दुर्गंध आने लगती है । इसका प्रभाव निर्मूल होनेमें समय लगता है । यथा, ये जो

पापकर्मो का (कर्मविपाक) कर्माशय है, इसे पूरे होने पर्यन्त, तज्जन्य फल भोगने ही पडते है । तदनन्तर कर्मासक्ति कम होनेपर, कर्मबंधन छूट जाते है । विस्तारपूर्ण चर्चा आगे शतानन्द ब्राह्मणके चरित्रमें सुस्पष्ट करेंगे ।

तच्छ्रुत्वा भगवद् वाक्यं नारदो मुनिरब्रवीत् ।
- नारद उवाच-
किं फलं किं विधानं च कृतं केनैव तद्व्रतम्॥१६॥
तत्सर्वं विस्तराद् ब्रुहि कदा कार्यं व्रतं हि तत् ।

इस प्रकार भगवद्वाक्य सुनते हि, नारदजीमुनि बोले, नारदजी के लिए एक दूसरा संबोधन मुनि - गीता के अनुसार - **दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः । वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ नारदश्चेति विख्यातो मुनीन्द्रस्तेन हेतुना** अर्थात् सुख दुःख में जो स्थिर है वह मुनि । **निरपेक्षं मुनिंशान्तं निर्वैरं समदर्शिनम्** (भागवत) जो अपेक्षा रहित हो और समदर्शी हो, जिसका किसीसे वैर न हो । ठीक, नारदजी ऐसे ही है, उन्होंने अपने लिए नहीं, जनहित की बात कही, स्वयंकी कोई अपेक्षा नहीं, वे देवो के पास भी जाते है, मानवों के पास भी आते है, दानवो के पास भी जाते है । सब उनका सन्मान करते है, निर्वैरी भी है ।

ऐसे मुनिवर बोलते है - **किं फलं किं विधानं च कृतं केनैव तद्व्रतम्,** हे भगवन् आपने जो व्रतकी बात कही है, उसका फल क्या है, उसका विधि-विधान भी कृपया बताओ, यह उत्तम व्रत कब करना चाहिए ।

शास्त्रोक्तविधि - विधान का महत्व है । बीनाविधान के व्रतका कोई अर्थ हि नहीं रहता, प्रायः निष्फल हि होते है - **न गच्छति विनापानंव्याधि रौषधशब्दतः । विनापिभेषजैर्व्याधिःपथ्यादेवनिवर्तते । न तु पथ्य विहिनानां भेषजानां शतैरपि। पथयेसति गदार्त्तस्य किमौषधनिषेवणैः। पथ्येऽसति गदार्त्तस्य किमौषधनिषेवणैः** - आयुर्वेद । जब वैद्यराज के पास जाते है तो वह औषध देते है, पथ्यापथ्य बताते है, दवालेने के नियम बताते है । आहार-विहार का प्रकार बताते है । इन सबके अनुशीलन से हि व्याधि जाती है । वैसे है, व्रतादिमें भी जो, शास्त्रोक्त विधि-विधान है, उसका अनुसरण करना आवश्यक बनता है ।

जब व्रत की बात आति है तो, नियम स्वतः आ जाते है । **सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधास्मृतः** । अग्नि पुराणानुसार, किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए दिनभरके लिए अन्न या जल या अन्य भोजन या इन सबका त्याग व्रत कहलाता है । किसी कार्य को पूरा करने का संकल्प लेना भी व्रत कहलाता है । संकल्पपूर्वक किए गए कर्म को व्रत कहते हैं । व्रतमें उपवासादिका महत्त्व रहता है ।

आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धि सत्त्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः अर्थात् आहार शुद्धिसे मनकी शुद्धि होती है और बुद्धि निश्चल होती है । **इक्षुराज पयोमूलं फलं ताम्बूलमौषधम् । भुक्त्वापीत्वाऽपि कर्तव्या, स्नानदानादिका क्रिया**, गन्नेका रस, दूध, फल, औषध-दवा इत्यादि उपवासमें ले सकते है । गीतामें तो साधक के लिए युक्ताहार एवं मिताहारका सविशेष महत्त्व है । **विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः। रसवर्ज रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते** - गी.२.५९॥ इतना ही नहीं इन्द्रिय संयमके लिए आहार - विहार भी व्रतका एक भाग ही बनते है । उपवास व्रतका एक अंग है ।

उप समीपे यो वासः, जीवात्मपरमात्ममनो । उपवासः स विज्ञेय न तु कायस्य शोषणम् अर्थात् जिससे चित्तवृत्ति को परमात्मामें स्थिर कर सके वही उपवास, व्रत का एक अंग है ।

सारांश यह है, कि मात्र औषधके नाम जान लेनेसे व्याधि दूर नहीं होता । उसका सेवन भी करना पडता हैं और इसके साथ निर्दिष्ट पथ्यापथ्य एवं आहार-विहार का भी अनुशीलन करना पडता है । व्याधिका उचित निदान भी होना आवश्यक है, औषध सेवन एवं पथ्यापथ्य का अनुशीलन से ही व्याधि निर्मूल होती है । इस प्रक्रिया से ही, देह निरामय एवं स्वस्थ बना सकते है ।

विधिवत् कार्य करने से हि फल मिलता है । आपको हलवा बनाना है, तो उसकी भी पूर्व तैयारी एवं विधि जाननी पडती है, अन्यथा, हलवा नहीं बन पाता । विधि-नियमादि की वस्तारपूर्ण चर्चा एवं वैज्ञानिक अभिगम - मेरी पूर्व प्रकाशित **मन्त्रशक्ति एवं उपासना रहस्य** नामक पुस्तक में विस्तृतरूपेण उपलब्ध है जो आप इस लिंक से डॉउनलोड कर सकते है,

। उपासना विभाग में अति सरल सादोहारण समझानेका प्रयास किया है । **विधिहीनस्य यज्ञस्य कर्ता सद्य: विनश्यति,** रामायण में कहा है, विधिहीन यज्ञो से सर्वनाश ही होता है । स्वयं रामजीने वनवास दरम्यान पूजा-अनुष्ठान शास्त्रोक्त प्रणालीसे हि किए है । वनमें श्राद्ध भी किया है । यज्ञोंमें वन्य फलोंका बलिदान भी किया है । महाराज दशरथ, युधिष्ठिरादिने भी विधिवत् यज्ञानुष्ठान किए है । वैदेही महाराज जनकने भी विधिवत् यज्ञ किए है, रावण, भक्तराज बलि सहित अनेक कथाए पुराणोंमें है । विधि च्युत होनेसे विपरित परिणाम की कथाए भी पुराणोंमें उपलब्ध है । स्वयं भगवानने अपने दिव्य अवतारों में कर्मकाण्ड का अनुमोदन-संवर्धन किया है, जो विरोध करते है वह शास्त्रों से अनभिज्ञ है ।

औषध सेवन की भी विधि होते है, यन्त्र चलाने के भी नियम होते है, मोटर चलानेके भी विधि-पद्धति होती है । घरमें केमेरा, कम्प्युटर चलानेकी भी नियत प्रक्रिया होती हैं । सबमें विधिका महत्व होता ही है । **यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः । न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥ तस्माच्छात्रंप्रमाणंते कार्याकार्य व्यवस्थितौ, ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्मकर्तुमिहार्हसि,** गीताने शास्त्रीय विधि की महत्ता को प्रसिद्ध किया है । किसी भी कर्मको शास्त्रके नियमानुसार, विधि-विधानसे ही करना चाहिए, अन्यथा पतन ही होता हैं । नियम विपरीत, औषध हो या योग, नूकशान ही करते है । **विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणाम्। श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते॥** विधि-विधान से रहित कर्म को तामस कर्म कहा गया हैं और **अधोगच्छन्ति तामसाः** ऐसे तामस आचरण करनेवाले अधोगतिको प्राप्त होते हैं । शास्त्र से ही परमात्माकी प्राप्ति होती हैं, क्योंकि, शास्त्र स्वयं परमात्माका आदेश ही नही, उनका स्वरूप भी है। स्वयं राम-कृष्णने भी वशिष्ठ-धौम्य-विश्वामित्र जैसे महर्षियोंसे विधिवत् यज्ञानुष्ठान किए हैं । **जो कर्मकाण्ड का विरोध करते हैं, वे पूर्णतया अज्ञानी है, ज्योतिष वेदनारायण का नेत्र है और कर्मकाण्ड पूर्णतया वेदप्रतिपादित है । जनसामान्य के कल्याण के लिए, आध्यात्मिक विज्ञान के आधारपर हमारे महान् ऋषियोंने उसे आविष्कृत किया है** ।

कुछ श्रुति प्रणाण इस प्रकार है **- साक्षात्प्राणाड्या च परमात्मप्राप्तिरूपं मोक्षं प्रतिसाधनभूतं कर्म उपासना ज्ञानं इति त्रयमपि...अतैव कर्मकाण्डादिरूपेण त्रेधाभूतास्सर्वेऽपि वेदाः परमात्मन्येव परिसमाप्तिमुपगच्छन्ति तदेतद् पठ्यते-** कठ.१.२.१५ । **यज्ञ दान तपः कर्म न त्याज्यम्,**गीता । जो कर्मकाण्डका विरोध करते है, शास्त्रों के अनभिज्ञ है या शास्त्रोंकी बातें उनकी, समझ के बहार होगा, यह निश्चित है । कर्मकाण्ड वेद प्रतिपादित है, वेदान्तादि ग्रंथ सहित गीतामें भी उसका समर्थन मिलता है । **भारतीय संस्कृतिका चीरहरण** नामके लेखमें इसकी विस्तारपूर्ण चर्चा है । **यज्ञ एवं बलिदान** में भी यज्ञोंमें बलिदानकी शास्त्रीयताका वर्ण किया है । अज्ञानी वक्ताओं को प्रायः वध, हत्या, हिंसा एवं बलिदान के अर्थ एक हि लगते है, इस लेखमें ऐसे अल्पज्ञों द्वारा किए हुए वक्तव्योका शास्त्रों के प्रमाणसे मिथ्या सिद्ध किया है, व्रतमें विधिका सविशेष महत्व हैं । पुराणों में कई कथाए हैं । प्रत्येक कार्य का एक निश्चत समय होता है, प्रत्येक राग का एक काल होता है । ज्योतिषमें पूरा मुहूर्त विभाग है, जो कार्यसिद्धिमें उचित कालका निर्देशन करता है । इस प्रकार नारदजीने विधि-विधानादि पूछ लिया । **सम्यक् विधानतः** ॥

- श्रीभगवानुवाच-

दु:ख-शोकादिशमनं धन-धान्यप्रवर्धनम्॥१७॥
सौभाग्य-सन्ततिकरं सर्वत्रा विजयप्रदम् ।
यस्मिन्कस्मिन् दिने मर्त्यो भक्तिश्रद्धासमन्वित:॥१८॥

जिस क्रममें नारदजी ने प्रश्न किए है, उसी ही क्रममें भगवानने प्रत्युत्तर दिये है । नारदजीने प्रथम पूछा- **किंफलं** व्रतका फल क्या है, फिर पूछा **किं विधानं** विधविधान क्या है, फिर पूछा **कदाकार्यं हि तद्व्रतम्** कब व्रत करना चाहिए । परमात्माने इसी क्रममे बताया **दु:ख-शोकादिशमनं धन-धान्यप्रवर्धनम्॥ सौभाग्य-सन्ततिकरं सर्वत्रा विजयप्रदम् ।** यह व्रत दुःख शोकादि का शमन करनेवाला है । एक बात ध्यान से देखो भगवानने ऐसा नहीं कहा कि दुःखशोकादि को मिटानेवाला है, शांत करनेवाला है । प्रारब्धजन्य दुःख शोक क्लेशादि तो मिटा नहीं शकते । पापकर्म तो भोगने हि पडेंगे । यह धनधान्यादिकी वृद्धि करनेवाला है, सौभाग्य, सन्तति

देनेवाला है और सर्वत्र विजय प्रदान करानेवाला है । पुराणों मे कई जगह पर पुत्रेष्टि यज्ञ, राजसूय यज्ञ, वृष्टियाग की कथाए है, यह लघूपाय है ।

यस्मिन्कस्मिन् दिने मर्त्यो भक्तिश्रद्धासमन्वित:यदैव जायते वित्तं, चित्तं श्रद्धा समन्वितम् । तदैव पुण्य कालोऽयं यतोऽनियत जीवितम्॥ अतःर्सवेषु कालेषु यज्ञकर्म शुभ प्रदः ईश्वराधनार्थं च सर्व पापापनुत्तये । जब पास में पैसा हो और चित्त में श्रद्धा हो तो उसी समय को पुण्यकाल या शुभ मुहूर्त समझकर यह व्रत कर सकते है, क्योंकि अल्पआयु, शुभकालकी प्रतिक्षामें क्वचित् आयु प्रवाहित हो जाए, इससे पूर्व निःश्रेयस साधना जरूरी है ।

सत्यनारायणंदेवं यजेच्चैव निशामुखे ।
ब्राह्मणैर्बान्धवैश्चैव सहितो धर्मतत्पर:॥१९॥

सत्यनारायणंदेवं यजेच्चैव निशामुखे, यजेच्चैव का अर्थ है यजन करना पूजनोपासनादि करना । पूजा-यजन क्यो करना चाहिए, क्या हम पूजा करेंगे तब हि भगवान बडे बनैंगे ? नहीं । हम परमात्माके अंश है और वह हमारा अंशी । हम दर्पणमें देखके जब श्रृंगार करते है तो हमारी ही शोभा बढती है, दर्पणकी नहीं । यह प्रकृति एवं पंचमहाभूतके स्वामि परमात्मा है। समग्र ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति के मूलमें परमात्मा है । यहीं पंचभूत हमारा पालन भी करता है । वायु अगर बंद हो जाए, तो हमारा जिवन संभव नही है । वैसे ही जल, तेज, आकाश या पृथ्वीके बीना भी हमारा अस्तित्व संभव नहीं है । पृथ्वी अन्नोषधिया न दे, स्थिर रहकर हमे आधार न दे या अपने परिभ्रमसे ऋतुए न बनाए । सूर्यका उदय न हो, वर्षा न हो, शुद्ध वायु न हो तो हमारे अस्तित्वकी कल्पना भी असंभव है ।

जो भगवानने हमे दिया है, वह उसे समर्पित करनेका भाव है । हमारे यहां बर्थडे पार्टी या मेरेज एनिवर्सरी में कोई गीफ्ट देता है, तो हम भी उसे रीटर्न गीफ्ट देते है । भगवानने प्रतिदिन हमें १४४० मिनिट का आयुष्य दिया, कुछ मिनिट उसे रीटर्न गीफ्टमें याद कर ले । गंधके रूपमें पृथ्वी तत्त्व, पुष्पके रूपमें आकाश तत्त्व, धूप के रूपमें शुद्ध, प्रफुल्लित वायु, दीपकके रूप में तेज, जलके रूपमे रसात्मक नैवेद्य अर्पण करनेका भाव हि प्रधान है । अन्यथा पूरे ब्रह्माण्डके स्वामि को हम क्या दे सकते है ?

निशामुखे श्रीसत्यनारायण भगवान की पूजा-यजन-अर्चना सायंकाल में करनेका कहा है । सूर्योदय के बाद, दिवस दरम्यान प्रवृत्ति के अधिष्ठाता सूर्यनारायण, जीवमात्रको प्रवृत्तिमें प्रेरित करते है । सूर्यास्त होनेसे ही गाय, बकरी आदि पशु, पक्षी, मानव अपने निवास प्रति लौटते है । प्रवृत्ति से निवृत्ति-विश्वामकी तरफ आते है । चित्तवृत्ति शांत होती है, जब चित्तवृत्ति शांत हो तब, ईश्वराधना उत्तम मानी गई है । स्मृतिकार भी कहते है **सत्कथा श्रवणं सायं, सन्ध्या होमादिकं च हि** (ल.आ.१.४) ।

हमारे यहां प्राय सभी प्रचलित स्तत्रों मे लिखा रहता है **एक कालं द्विकालं वा, सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति।** प्रातःकाल के यजनसे रात्रीकृत पापक्षय होते है और सायंकाल के यजन से दिवस दरम्यान किए पापोंका क्षय होता है । यथा प्रदोषकालमें देवोपासना, यजनादिका अति महत्त्व है । वेदमें सूर्यको आत्मा तथा चन्द्रको मन माना है (सूर्य आत्मा जगतः, चन्द्रमा मनसोऽजायत)**,** प्रदोषकाल में दोनों के दर्शन होते है, मन और आत्मा ।

ब्राह्मणैर्बान्धिवैश्चैव सहितो धर्मतत्परः, सत्कर्ममें अपने स्नेही, स्वजन, बांधवोको साथ रखना चाहिए, सबका सामुहिक कल्याण हो । **सदा पुरोहितं तस्मात्सर्वकर्मसु चेतसा,** यहां **ब्राह्मण** अर्थ होता है, अपना कुल पुरोहित के द्वारा व्रत-पूजादि सम्पन्न होना चाहिए । **आचार्यवान् पुरुषो हि वेद,** छान्दोग्योपनिषद में कहां है कि, गुरू होना चाहिए । **आचार्यवान् भव । योगविशिष्ठकारने तो बताया हैं कि गुरूपदेशशास्त्रर्थेबिना आत्मा न बुध्यते,** गुरू तो होना ही चाहिए ।

पुस्तके लिखिता विद्या, येन सुन्दरी जप्यते □सिद्धिर्न जायते देवि ! कल्पकोटिशतैरपि, षट्कर्मदीपिका□ **पुस्तके लिखितान्मन्त्रानवलोक्य जपेत्तु यः□स जीवन्नेव चाण्डालो, मृतः श्वानो भविष्यति,** नित्योत्सवः□ **पुस्तके लिखितान् मन्त्रान्, विलोक्य प्रजपन्ति ये□ब्रह्महत्या-समं तेषां, पातकं परिकीर्तितम्,** कुलार्णवः २५□२२□यूं तो दुनियामें सभी विद्याओंकी पुस्तके उपलब्ध हैं किन्तु क्या कोई सर्जरीकी पुस्तक पढकर सर्जरी कर सकता हैं या कोई एरक्राफ्ट चला सकता हैं क्या? गुरू अनिवार्य हैं । चाहे मंत्रविज्ञान हो या यज्ञादि कर्म, कथाख्यान हो या व्रतोपासना, यजन, होम

या पूजन गुरू तो होने हि चाहिए । स्वयं नारायणने भी राम व कृष्ण बनकर गुरूचरण सेवा की हैं । वशिष्ठजी कहते हैं **गुरूम्बीना वृथो मंत्रः।**

गुरू कैसे होने चाहिए या व्रत या कथा श्रवण किससे करना चाहिए ? **विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्र विशुद्धिकृत्। द्रष्टांन्कुशलो धीरो वक्ता कार्योऽतिनिःस्पृहः**, प.पु.भा.म ६॥ **ब्राह्मणंच पुरस्कृत्य ब्राह्मणेन च कीर्तितम्, पुराणंश्रृणुयान्नित्यं महापापदवानलम्**, प.पु.॥ शास्त्र कहता है, विरक्त, सदाचारी ,वेदशास्त्र के ज्ञाता, दृष्टान्तकुशळ और निस्पृही ब्राह्मणका आदरकर के, पुरस्कार देकर पुराण श्रवण करना चाहिए । **विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् । यष्टारं दक्षिणाहीनं नास्ति यज्ञसमो रिपुः**॥ कर्मकर्ता पुरोहित को कर्मान्ते दक्षिणा देनी चाहिए । **दक्षिणा विप्रमुद्दिश्य तत्काले तु न दीयते। एक रात्रे व्यतीते तु तद्दानं द्विगुणं भवेत् ॥ मासे शतगुणं प्रोक्तं द्विमासे तु सहस्रकम् । संवत्सरे व्यतीते तु सो दाता नरकं व्रजेत्**॥ ब्राह्मण द्वारा कराये गये कर्म की दक्षिणा तत्काल नही दी जाये तो वह । एक रात्री व्यतीत होने पर द्विगुनी और एक माह पश्चात् सौ गुनी और दो माह पश्चात् सहस्र गुनी अर्थात हजार गुनी और एक वर्ष तक वो न दे तो वह नर्ख का भागी होता हे ।

आगे ब्राह्मण भोजन **विप्रांश्च प्रतिभोजयेत्** । प्रश्न उठता है कि, ब्राह्मण से ही क्यों ? क्या कोई अन्य विद्वान शास्त्रविशारद नहीं चल सकता ?

उसका प्रमाण वेदमें है, वेद को अन्त्य प्रमाण माना है । **ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्** यजुर्वेद अर्थात् ब्राह्मण भगवान् नारायण के मुख से उत्पन्न नहीं हुआ, स्वयं नारायण का मुख है (आसीद्)। इसलिए कहा है कि **ब्राह्मणा यानि भाषन्ते मन्यते तानि देवता, ब्रह्मवाक्यं जनार्दनम्** इत्यादि ।

यहां एक विशेष तर्क है, हम मुखसे अन्न ग्रहण करते है, किन्तु मुख स्वयंके पास कुछ नहीं रखता है । वह आगे भेजता है जिससे पूरे शरीर की पुष्टि हो सके । मधुर मिष्टान्न हो या कटु औषध उसका सुख-दुःख स्वयं सहता है, किन्तु श्रेय एवं पुष्टि पूरे शरीरकी करता है, यथा मुख विरक्त भी है ।

भागवतादि पुराणोंमे, स्मृतियोंमें पूजा, यज्ञ, जप, पुरूश्चरण, शांतिकर्म, श्राद्धादि सबमें ब्राह्मण भोजनकी प्रधानता बताई है । क्योंकि अग्निकी

उत्पत्ति भी विराट पुरूषके मुखसे हुई है, **मुखादग्निरजायत,** यजुर्वेद । **अग्न्याभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् यो ह्यग्निः स द्विजो विप्रैर्मन्त्रदर्शिभिरूच्यते,** मनु । **यो हियां देवतामिच्छेत् समाराधयितुं नरः। ब्राह्मणान् पूजयेद् यत्नात् सतस्यां तोषहेतुतः ॥ द्विजानां वपुरास्थाय नित्यं तिष्ठन्ति देवताः । पूज्यन्ते ब्राह्मणालाभे प्रतिमादिष्वपि क्वचित् ॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तत्तत्फलमभीप्सुभिः।द्विजेषु देवतानित्यं पूजनीया विशेषतः॥ विभूतिकामःसततं पूजयेद्वैपुरंदरम् ।ब्रह्मवर्चसकामस्तु ब्रह्माणं ब्रह्मकार्मुकः,** कू.पु.२६.३५-३८॥ इस प्रकार ब्राह्मणका सत्कार-पूजा की बात शास्त्र करता है, **गन्धैःपुष्पैश्चधूपैश्च वस्त्रैश्चाप्यथभूषणैः । अर्चयेद् ब्राह्मणान्भक्त्या श्रद्दधानः समाहितः॥** विषय है तो ब्राह्मण भोजन की भी चर्चा यहां कर लेते है । **यावतो ग्रसते ग्रासान् हव्यकव्येषु मन्त्रवित् । तावतो ग्रसते पिण्डान्शरीरे ब्रह्मणः पिता -** यम स्मृति । **नाहं तथाद्मि यजमान हविर्वितानेश्च्योतद्घृतप्लुतमदन्हुतभुङ्मुखेन । यद्ब्राह्मणस्य मुखतश्चरतो -ऽनुघासं, तुष्टस्यमय्यवहितैर्निजकर्मपाकैः** भा.३.१६.८॥ ब्राह्मण विराटका मुख है, यथा इसको दिया हुआ, हव्य कव्य देवता एवं पितृओंको अवश्य प्राप्त होता है, इसके वैज्ञानिक तर्क है, किन्तु हम आगे चर्चा करेंगे । भागवतमें स्वयं भगवान कहते है कि, मुझे यज्ञमें दी गई आहूति से भी अधिक संतोष तब होता है, जब ब्राह्मण के औष्टपर मिष्टन्न एवं घी की चमक दिखती है । ब्राह्मण कैसे जन्म लेते है, कर्म से या जन्म से, क्यों भगवान्ब्राह्मणप्रिय कहा है, इत्यादिका विचार इसी पुस्तकके परिशिष्टमें पूर्ण शास्त्रीय अभिगम के साथ दिया है, यथा यहां चर्चा अनावश्यक है । **तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम्** अनेक जन्मोके पापक्षय एवं पुण्यार्जनसे ब्राह्मणकुलमें जन्म मिलता है ।

एक बात विचारणीय है, कि उपरोक्त महत्त्व सभी ब्राह्मणों के लिए नहीं है । **रतिर्विप्रस्य सूत्रत्वे** मात्र जनोईधारी ब्राह्मण, जो न तो संध्यादि सेवन करते है, न गायत्रीकी उपासना । **लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरोस्-तितिक्षमाणस्य परेण निन्दाम्** । **यस्यागमः केवल जीविकायै तज्ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति॥** अर्थात जो शास्त्रचर्चासे दूर भागते है, केवल अपनी नौकरी पाकर प्रसन्न है और जिसकी विद्या केवल जीविका के लिए है ऐसे ज्ञानके विक्रेताको बनिया कहा गया है । **तमाल भक्षितयेन संगच्छे**

नरकार्णवे । धूम्रपानरतं विप्र दानं कुर्वन्ति ये नराः । दातारो नरकं यान्ति ब्राह्मणो ग्रामशूकरः- प.पु.॥ जो धूम्रपान करते है, व्यसनी है, तम्बाकु मावा पडिकीयां मुखमें रखते है, उन्हे दान देनेसे नरकगति होती है, पाप लगता है । ब्राह्मण कम विद्वान हो तो चल सकता है, व्यसनी तो कदापि नहीं । यह अपात्रीकरण है ।

देखो, अपात्रीकरण भी सोचना पडता है । किसी भिखारी को आप १० रूपए, गरीब मानकर देते है । किन्तु, यदि वह १० रूपये की, शराब पीकर नशे में, अपनी पत्नी और पुत्रोंको मारता है. तो उनकी प्रत्येक आह-दर्दचित्कारका शाप आपको लगता है ।

नैवेद्यं भक्तितो दद्यात् सपादं भक्तिसंयुतम् ।
रम्भाफलं घृतं क्षीरं गोधूमस्य च चूर्णकम् ॥२०॥
अभावे शालिचूर्णं वा शर्करा वा गुडं तथा ।
सपादं सर्वभक्ष्याणि चैकीकृत्य निवेदयेत् ॥२१॥

नैवेद्य पूजाके उपचारान्तर्गत उत्तरपूजा का एक उपचार है । हमारी यजन-पूजन परिपाटीमें नैवेद्यका महत्त्व इस प्रकार है, **निवेदं निवेदनमर्हतीति । देवाय निवेदनीयद्रव्यम् । नैबेद्येन भवेत्स्वर्गो नैवेद्येनामृतं भवेत् । धर्म्मार्थकाममोक्षाश्च नैवेद्येषु प्रतिष्ठिताः ॥ सर्व्वयज्ञफलं नित्यं नैवेद्यं सर्व्वतुष्टिदम् । ज्ञानदं मानदं पुण्यं सर्व्वभोग्यमयं तथा ॥ स सर्व्वकामान् संप्राप्य मम लोके महीयते । साक्षात् खादति नैवेद्यं विप्ररूपी जनार्द्दनः । ब्राह्मणे परितुष्टे च सन्तुष्टाः सर्व्वदेवताः ॥ देवाय दत्त्वा नैवेद्यं द्विजाय न प्रयच्छति । भस्मीभूतश्च नैवेद्यं पूजनं निष्फलं भवेत् ॥ देवदत्तं न भोक्तव्यं नैवेद्यञ्च विना हरेः । प्रशस्तं सर्व्वदेवेषु विष्णोर्नैवेद्यभोजनम् ॥ विष्णोर्निवेदितं पुष्पं नैवेद्य वा फलं जलम् । प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यं त्यागेन ब्रह्महा जनः ॥ विष्णुनैवेद्यभोजी यो नित्यं वा प्रणमेद्धरिम् । पूजयेत्स्तौति वा भक्त्या स विष्णुसदृशो भवेत् ॥** अर्थात देव निवदनार्थ जो फल, दूध, अन्नादि द्रव्य है, इसे नैवेद्य कहते है । धर्म,अर्थ,काम एवं मोक्ष नैवेद्यमें समाहित है । परमात्माको समर्पित भोज्य है, वह प्रसादरूपेण ब्राह्मणको दिया जाता है, विप्ररूपी जनार्दन इस नैवेद्य-प्रसादसे संतुष्ट होता है,

प्रभुको दिया, नैवेद्य यदि विप्रको न दिया जाए तो, हमारे पुण्य भस्मीभूत हो जाते है। प्रसाद ग्रहण करनेसे ब्रह्महत्यादि पाप भी दूर हो जाते है।

तद् ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः देवताओं के दिव्य विग्रह हमारी तरह पांचभौतिक नहीं है। अपनी-अपनी कोटी के अनुसार कोई आकाशतत्त्व वाले है, कोई वायुरूपमें है, कोई जल या तेज रूपमें है। यथा, जो रूपमें है वह देवता नैवद्यमेंसे अपने भूत को ग्रहण करते है। **सविता गोभिर्रसं भुङ्के** जिस प्रकार सूर्य स्वकिरणोंसे पृथ्वीसे जल पीता है। **मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति** छां.३.८.१॥ **नैवेद्यं पुरतो न्यस्तं चक्षुषा गृह्यते मया। रसं च दासजिह्वायामश्नामि कमलोद्भव,** भाग. ॥ हे, कमलोद्भव ! मेरे सामने रखे हुए भोगोंको मैं नेत्रोंसे ग्रहण करता हूँ। **पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्याप्रयच्छति। तदहं भक्त्युपहृतमश्नामिप्रयतात्मनः** गीता॥ जो तेजसात्मक है, वह नैवेद्यके दर्शन मात्रसे तुष्ट हो जाते है, कोई गंध, तो कोई जल-वायु ग्रहण करते है। यहां पांचभौतिक रूपमें भूदेव - विप्रजनार्दन है, वह नैवेद्यको पूर्णरूप से ग्रहण करते है।

स्थूल व तार्किक बुद्धिका एक सवाल है कि, हम भगवान की मूर्ति के आगे जो, प्रसाद चढ़ाते हैं, क्या वह उसे ग्रहण करती है? अगर ग्रहण करती है तो वह कम क्यों नहीं होता? अगर मूर्ति प्रसाद का अंश मात्र भी ग्रहण नहीं करती तो फिर प्रसाद चढ़ाने का प्रयोजन क्या है? सवाल वाजिब है।

इसी से जुड़ा सवाल है कि जब सब कुछ भगवान का ही दिया हुआ है तो वही उसे अर्पण करने का क्या मतलब है? जिसने संपूर्ण चराचर जगत बनाया है, सारे भोज्य पदार्थ उसी की देन हैं। उसी का अंश मात्र अर्पित करने से उसे क्या फर्क पड़ता होगा?

भगवान की मूर्ति भोग ग्रहण करती है या नहीं, इस शंका का समाधान एक प्रसंग कुछ इस प्रकार व्यक्त किया गया है। **यह प्रसंग मैने उद्धृत किया है** (यूट्युब एवं वॉट्सेपसे)।

एक शिष्यने अपने गुरूसे यह प्रश्न किया। इस पर उन्होंने पुस्तक में अंकित एक श्लोक कंठस्थ करने को कहा। एक घंटे बाद गुरू ने शिष्य से पूछा कि

उसे श्लोक कंठस्थ हुआ कि नहीं। इस पर शिष्य ने शुद्ध उच्चारण के साथ श्लोक सुना दिया । गुरू ने पुस्तक दिखाते हुए कहा कि श्लोक तो पुस्तक में ही है, तो वह तुम्हारी स्मृति में कैसे आ गया? स्वाभाविक रूप से शिष्य निरुत्तर हो गया। गुरू ने समझाया कि पुस्तक में जो श्लोक है, वह स्थूल रूप में है । तुमने जब श्लोक पढ़ा तो वह सूक्ष्म रूप में तुम्हारे अंदर प्रवेश कर गया, लेकिन पुस्तक में स्थूल रूप में अंकित श्लोक में कोई कमी नहीं आई। इसी प्रकार भगवान हमारे प्रसादको सूक्ष्म रूपमें ग्रहण करते हैं और इससे स्थूल रूप के प्रसाद में कोई कमी नहीं आती।

वस्तुत: प्रसाद चढ़ाना एक भाव है, कृतज्ञता प्रकट करने का। और भाव की ही महिमा है। कहा तो यहां तक जाता है कि अगर हमारे पास पुष्प, फल, मिष्ठान्न आदि नहीं हैं तो भी अगर हम कल्पना करके सच्चे भावसे, उसे अर्पित करते हैं तो, वह उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना भौतिक रूप से प्रसाद चढ़ाने का। अर्थात महत्व पदार्थ का नहीं, बल्कि भाव का है। उससे भी दिलचस्प बात ये है कि भगवान को चढ़ाया हुआ प्रसाद दिव्य हो जाता है। भले ही उसमें रासायनिक रूप से कोई अंतर न आता हो, तो भी उसके एक-एक कण में दिव्यता आ जाती है। यह भी एक भाव है। तभी तो कहते हैं कि प्रसाद का तो एक कण ही काफी है, जरूरी नहीं कि वह अधिक मात्रा में हो । इसके अतिरिक्त प्रयास ये भी रहता है कि वह अधिक से अधिक के मुख में जाए। यह भी एक भाव है, सबके भले का।

तेरा तुझ को अर्पण, क्या लागे मेरा। ऐसा इसलिए कहा जाता है ताकि कृतज्ञता प्रकट हो । प्रसंगवश यह जान लीजिए कि श्रीमद् भागवत गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि **पत्रं**, **पुष्पं**, **फलं**, **तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति तदहं भक्तयुपहृतमश्नामि प्रयतात्मन**। अर्थात जो कोई भक्त प्रेमपूर्वक मुझे फूल, फल, अन्न, जल आदि अर्पण करता है, उसे मैं सगुण प्रकट होकर ग्रहण करता हूं। इसी प्रकार वेद कथन है कि यज्ञ में हृविष्यान्न और नैवेद्य समर्पित करने से व्यक्ति देव ऋृण से मुक्त होता है ।

हमारे यहां भिन्न-भिन्न देवताओं को भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रसाद चढ़ाने की परंपरा है। विष्णुजी को खीर या सूजी के हलवे का नैवेद्य चढ़ाया जाता है। शिव को भांग और पंचामृत का नैवेद्य पसंद है । **फलानि दत्त्वा देवेभ्यः**

सुफलां विन्दते श्रियम्, वि.ध.। **कदलीनारिकेलाम्रपनसानां फलानि च । जम्बूफलेक्षुदण्डानि सुपक्वानि शुमानि च**, पारिजात । कदलीफल, नारिकेल-श्रीफल, गन्ना इत्यादि ऋतुफल नैवेद्य के रूपमें, परमात्मा को समर्पित करना चाहिए ।

विप्राय दक्षिणां दद्यात् कथां श्रुत्वा जनै:सह ।
ततश्च बन्धुभि:सार्धं विप्रांश्च प्रतिभोजयेत्॥२२॥

विप्राय दक्षिणां दद्यात् दक्षिणा यज्ञ-यजनोपासनादि का अंग है ।एक बात सुस्पष्ट है कि, कोर्टकी कार्यवाही अपने संविधानसे चलती है । रासायणिक उत्पादन की अपनी प्रणाली होती है । शिक्षा एवं संगीतकी भी अपनी स्वतंत्र प्रणाली है, हर रागका एक समय होता है । प्रणाली के अनुसरण से लाभ होता है । ठीक, वैसे ही शास्त्रविदित यज्ञयाजनादि की भी एक अपनी स्वतंत्र प्रणाली है, अपना वैज्ञानिक अभिगम है । यह अभिगम समझमे आए या न आए, इसका अनुसरण करना ही पडता है । ऐसे कई यन्त्र है, कार्य है, प्रक्रीयाए है, जिसका विज्ञान या टेक्नोलोजी समझे न समझे, हम उससे लाभान्वित होते है । विमानमें सफर करते है, कैसे उडता है, कैसे अपने गंतव्यपर उतरता है । वैसे ही हम, कार, कम्प्युटर, वोशिंग मशीनसे लेकर अनेक उपकरणोंका उपयाग करते है, प्रायः इसकी पूर्ण टेक्नोलोजी ज्यादातर लोगों को मालूम नहीं है ।

वैसे ही, यज्ञादि-विधिवाधान शास्त्रानुसार चलता है । **तन्त्रप्रत्यहं दक्षिणा रहितं देवार्चनं कार्यमिति हेमाद्रिः। पूजासाफल्यार्थ सदक्षिणं कार्यमिति महार्णव ऋग्विधाने । देवे दत्त्वा तु ताम्बूलं देवे दत्त्वा तु दक्षिणाम् । तत्सर्व ब्राह्मणे दद्यादिति । विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् । श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते**, गीता॥ **अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मन्त्रहीनस्तु ऋत्विज:। यष्टारं दक्षिणाहीनं नास्ति यज्ञसमो रिपु:**॥

धर्मकार्य उदार हाथसे करना चाहिए । प्रायः देखा गया है कि, अपने परिवार के वस्त्राभूषणों की खरीदि उत्तम प्रकार से करते है, वहां हमारी शक्तिसे भी ज्यादा खर्च कर लेते है, यह प्रेम है । दूसरा रोगोपचार में डॉक्टरों यो होस्पिटल के बीलमें कटौती नहीं कर सकते, वकीलकी फिसमें

कटौती नहीं कर सकते, यह विवशता है। किन्तु धर्मकार्यमें चलानेकी वृत्ति आजाती है। पुजा के लिए खास छोटी सुपारी ढूंढ कर लाते है। वस्त्र भी पूजाके, हल्के, कमदामवाले लेकर आते है। चावल भी मोटे जो कोई नहीं खाता वैसे लेकर आते है। जहां चल सके वहां अक्षत ही चडाते है। प्रायः वहां विवशता भी नही और प्रेम भी नहीं।

हम अपने घरका सामान शुद्ध एवं अच्छा पसंद करते है। क्या कभी पूजामें आनेवाला चंदन, कुमकुम कितना शुद्ध है, इसका विचार किया? नहीं। और फल तो अच्छा ही चाहिए। शीघ्र ही चाहिए। अति निम्नकक्षा की यह मानसिकता है। विवाहादि में विडियोग्राफरको, बेन्डवालेको, महेंदीवालेको या निमंत्रण कार्डका, जितने पैसे देते है, क्या इतना विध करानेवाले, ब्राह्मणको देते है, प्रायः नहीं। विडियो महत्त्वका है या विधि। **क्रुद्धेन न च कर्त्तव्यं लोभेन त्वरया न च। मत्पूजनं विधानेन यदीच्छेत् परमां गतिम्, वराहपुराणम्॥ वित्तशाठ्यं न कारयेत्, वित्तशाठ्यं न कुर्वीत यदीच्छेत्क्षेममात्मनः॥** कहा गया है, अपने वैभव एवं सामर्थ्यानुसार, औदर्यपूर्ण पूजा करनी चाहिए, जैसे हम हमारे सामर्थ्य एवं प्रतिष्ठानुसार संतानों के लग्न, वास्तु आदि करते है। यदि हमे शास्त्रोक्त फल चाहिए तो, शास्त्रोंका अनुसरण भी करना पडेगा।

हमे तो, शास्त्रोक्त नियमों से, मुक्ति चाहिए, छूट चागिए। हम धोती पहनकर पूजा नहीं कर सकते। हम उपवास नहीं रख सकते। इतना ही नहीं पर हम तब बोल देते है ,कि भगवान तो भा के भूखे है। बात सही है, किन्तु आप तो भगवान को मूर्ख समझ रहे है। यह चलानेकी वृत्ति अन्यत्र क्यों नहीं आती और यदि आप कहते है कि भगवानने कहां है ऐसा करो, ऐसा न करो, तो एकबार शास्त्रोंको ध्यान से पढे। **श्रुतिस्मृति ममैवाज्ञे, शास्त्रपूर्वके प्रयोगे अभ्युदयः, अवतीर्णो जगन्नाथः शास्त्ररूपेण वै प्रभुः** (शाण्डिल्य स्मृ ४.११३)**,** ये जो शास्त्र है, वह भगवानका आदेश भी है स्वरूप भी है। शास्त्रकी अवहेलना से कर्मफल कभी नहीं मिलता।

कथां श्रुत्वा जनैः उपदेश द्वारा सनातन सत्यों को आत्मसात् करना ही सच्चा श्रवण है, श्रुति भी कहती है **ब्रह्मात्मैक्ये हि तात्पर्यमिती धीः श्रवणं भवेत्,** कठ। सबके साथ, ईश्वर चरित्र-कथा श्रवण करना चाहिए। **श्रुतं**

हरति पापानि कथा श्रवण मात्रसे अन्त:करण शुध्द एवं निष्पाप हो जाता है । **श्रुण्वत:स्वकथां कृष्ण: पुण्यश्रवण कीर्तन:। हृद्यन्तस्थोह्य भद्राणि विधुनोतिसहृत्सताम् ॥ द्रूतस्य भगवद्धर्मा धारावाहिकतांगत:। परेशे मनसोवृत्ति भक्तिरित्याभिधीयते ॥ प्रविष्ट: कर्णरन्ध्रें स्वानां भाव सरोरूहम्□ धुनोति रामलं कृष्ण सलिलस्य यथासरत्॥** भगवत्कथा श्रवण से अन्त:करण पवित्र हो जाता है और ईश्वर चरणानुराग बढता है । सत्श्रवण कर्णमार्ग से हृदयमें प्रवेश करके, अन्तःकरणको निर्मल करता है । श्रीमद्भागवतमे तो उसे कर्णरसायन कहा है और बार-बार इस कथामृतका पान करनेकी बात वेदव्यासजी करते है ।

जब हम गाली सूनते है तो क्रोध आता है, प्रसंशा सूनते है तो आनन्द मिलता है, क्योंकि हम यह दिलसे-मनसे सूनते है, तात्पर्य यही है कि हम कथा श्रवण भी मनसे करें। **श्रवणात्मननं चैव जायतेमुनिसत्तम। मनना-ज्जायते ध्यानं ध्यानाच्चैव तु दर्शनम् ॥ अतोऽस्य श्रवणं पुण्यप्रदं कामार्थसाधनं। सत्कथा भक्तिजननी ततो मोक्षप्रदायकः ॥** भक्तिका उद्गम एवं मुक्तिका द्वार है श्रवण, इश्वर दर्शन का, प्रायः यह प्रथम सोपान है।

जिस प्रकार, हम जिसकिसी चीजका, टी.वी., रेडियो आदि में ज्यादा विज्ञापन सुनते-देखते है, वह चीज मन में बस जाती है । इसी आधार पर हम शेम्पु, कार यो कपडे खरीदते है । पुराणादि का बार-बार श्रवण करना उत्तम माना है । **धन्यंयशस्यमायुष्यं पुण्यंमोक्षप्रदं नृणाम्, पुराण श्रवणं विप्राःकथनं च विशेषत: । श्रुत्वाचाध्यायमेवैकं सर्वपापै: प्रमुच्यते, उपाख्यानमथैकं वा ब्रह्मलोके महीयते** । पुराण के श्रवण से धन, धान्य, आयुष्य, पुण्य, मोक्षादि मिलता है । उसके एक अध्याय या उपाख्यान से भी पाप नष्ट हो जाते है और ब्रह्मलोक में महत्ता प्राप्त होती है । **पुराणं धर्मशास्त्रं च वेदानामुपबृंहणम् पुराण** व धर्मशास्त्र का विस्तार वेदों से हुआ है और **वेदो नारायणो साक्षात्** वेद स्वयं ही नारायण का स्वरूप है ।

ततश्च बन्धुभि:सार्धं विप्रांश्च प्रतिभोजयेत् - भगवान को जो, भोग लगाया है या नैवेद्य लगाया है, वह परमात्माको समर्पित करनेका उपरान्त प्रसाद बनता है । प्रसाद जितना ज्यादा बटे अच्छा ही है । प्रसाद का अर्थ है कृपा

परमात्माकी कृपा अपने बंधुवर्ग पर भी हो । ब्रह्मण भोजनकी बात आगे सविस्तर बता चूके है ।

प्रसादं भक्षयेद्भक्त्यानृत्यगीतादिकं चरेत् ।
ततश्च स्वगृहंगच्छेत् सत्यनारायणं स्मरन्॥२३॥

पूजा उपचारोंकी चर्चा है । मानसोपचार, एकोपचार, पंचोपचार, दशोपचार, षोडशोपचार, विंशोपचार, द्वात्रिंशोपचार, चतुःषष्ठ्योपचार, राजोपचार इत्यादि शास्त्रमें वर्णित है।

श्रद्धापूर्वक यजन, श्रीहरिका कथा श्रवण के उपरान्त, भगवानका संकीर्तन नृत्यगीतादि करना चाहिए । **सर्वे वेदाः यत्पदमामनन्ति**, सब वेद सर्वाश्रिय भगवान का ही प्रतिपादन करते है । **वेदे रामायणे चैव पुराणेभारते तथा । आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते** ॥ वेद, रामायण, पुराण, महाभारत आदि सब में बस एक ही बात है, आदि अन्त और मध्य में भी बस हरि ही है, यथा उनका संकीर्तन करना चाहिए नृत्य-गीतादि भगवानकी पूजा के उपचार है । दीर्घकालसे बंद कार यदि न चले, तो उसे धक्के देकर चलाते है, वैसे हि विषयासक्त मनोवृत्तिको ईश्वराभिमुख करनेके लिए, संकीर्तन आवशयक है, प्रभुभक्तिके मार्गपर प्रवृत्त होता है । **तत्र पूजा नाम देवतोद्देशेन द्रव्यत्यागात्मकत्वाद्याग एव ॥ क्रुद्धेन न च कर्त्तव्यं लोभेन त्वरया न च । मत्पूजनंविधानेन यदीच्छेत्परमां गतिम्,** व.पु॥ पूजा का सामान्य अर्थ है कि, इष्ट देवताको केन्द्रमें रखकर, यथाशक्ति द्रव्योपचार से भगवानका अर्चन करना । निम्नोक्त पूजा के प्रकार इससे पूर्व प्रकाशित **मन्त्रशक्ति एवं उपासना रहस्य** नामकी पुस्तक से उद्धृत किया है ।

पंचशुद्धि-पंचपूजा-पंचमुक्ति - नित्योपासना में पंचशुद्धि उल्लेख शास्त्रों में है । पंच शुद्धि - **आत्मशुद्धिःस्थान शुद्धिर्द्रव्यस्य शोधनस्तथा । मन्त्रशुद्धिर्देवशुद्धिः पंचशुद्धिरितीरिता ॥ पंचशुद्धि विहीनेन यत्कृतं न च तत्कृतम् -** कालीतंत्र । आत्मशुद्धि, स्थानशुद्धि, देवशुद्धि, मन्त्रशुद्धि एवं द्रव्यशुद्धि ये पांचो की शुद्धि के उपरान्त ही उपासना फलीभूत होती है । **भूतशुद्धि प्राणायामाद्यखिल न्यासैरात्म शुद्धिः । मूलमंत्रमातृकापुटित**

क्रमोक्रमात् द्विरावृत्या जपेन मंत्रशुद्धिः । पूजा द्रव्याणांमास्त्रपूत सामान्यार्घजल प्रोक्षणान धेनुमुद्रा प्रदर्शनेन द्रव्यशुद्धिः।

यहां पंच शुद्धि के साथ पांच प्रकार की पूजा भी हो जाती है । **अभिगमनमुपादानं योगः स्वाध्याय एव च । इज्या पंचप्रकारार्चा क्रमेण कथयामि ते ।१०॥ तत्वाभिगमनं नाम देवतास्थानमार्जनम् । उपलेपं च निर्माल्यदूरीकरणमेव च ।११॥ उपादानं नाम गंध पुष्पादिचयनं तथा । योगो नाम स्वदेवस्य स्वात्मनैवात्मभावना ।१२॥ स्वाध्यायो नाम मंत्रार्थानुसंधापूर्वको जपः। सूक्तस्तोत्रादिपाठश्च हरेःसंकीर्त्तनं तथा ।१३॥ तत्त्वादिशास्त्राभ्यासश्चस्वाध्यायःपरिकीर्तितः। इज्यानामस्वदेवस्य पूजनंच यथार्थतः।१४॥ इतिपंचप्रकारार्चा कथितातवसुव्रते -** प.पु.अ.७८॥ देवस्थान की सफाई, लिंपन, क्षालन, निर्माल्य को दूर करने को कहते है अभिगमन । पूजा के लिए सुन्दर फल-फूलादि एकत्रित करने को कहते है उपादान । देवता का ध्यान, न्यासादिक को कहते है योग । भगवान के सन्मुख मंन्त्रजप, स्तोत्र-स्तुत्यादि को कहते है स्वाध्याय । श्रद्धाभाव से विधिवत् भगवान का पूजन को कहते है इज्या ।

सार्ष्टिसामीप्य सालोक्य सारूप्यैकत्वमप्युत। दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः- भाग.३.२९.१३।। उपरोक्तानुसार पूजा करनेसे, पांच प्रकार का देव तादात्म्य होता है, १. सालोक्य: सालोक्य का अर्थ है भौतिक मुक्ति के बाद उस लोक को जाना, जहां भगवान निवास करते हैं। २. सामीप्य: सामीप्यका अर्थ है भगवान का पार्षद-सेवक बनना। ३. सारुप्य: सारुप्य का अर्थ है भगवान् जैसा स्वरूप-तेज प्राप्त करना । ४. सार्ष्टि: सार्ष्टि का अर्थ है भगवान् जैसा ऐश्वर्य प्राप्त करना । ५. सायुज्य: सायुज्य का अर्थ है भगवान् के ब्रह्मतेज या ब्रह्मज्योति में समा जाना ।

इसको हम उदाहरण सहित समझते है । मानो किसी साधु को उपासना के लिए एकान्त स्थान चाहिए । वह स्थान की शोध में निकल जाता है । वन में एक सुन्दर मन्दिर दिखता है और वह उसे उचित स्थान मानकर वह उसके समीप जाता है । समीप में एक जलाशय भी है, प्रांगण में कुछ फल-फूल के वृक्ष भी है । किन्तु, समीप जानेपर पता चलता है कि, यह तो निर्जन है और वहां बहोत कूडा पडा है । मन्दिर में भी शिवलिंग है किन्तु

वहां भी पक्षीयों के गोंसले है, उनकी बीट पडी है। शीघ्र ही वह बहार का प्रांगण - मंदिर की सफाई करता है। जलाशय से जल लाकर उसे साफ करता है। फिर स्नानादि करके, जलाशय मे गीरे हुए पत्ते-फूल को हटाके शुद्धजल लेकर, मन्दिर को धोता है। फल-फूलादि शुद्धकरके लाता है। चन्दन काष्ट को पत्थर पर गीसकर चन्दन तैयार करता है। शिवलिंग को साफ करता है। न्यासादि पूर्वक मन्त्र से विधिवत् पूजा करता है। यही पंचशुद्धि भी है और पंचपूजा भी। मन्दिर एवं प्रांगण की सफाई स्थानशुद्धि है, स्नान, नित्यकर्म, प्राणायामादि (देह) आत्मशुद्धि है, शिवलिंग का क्षालन करके शुद्ध करना देव शुद्धि है, शुद्ध जल से फल-फूल को धोकर शुद्ध करना द्रव्यशुद्धि एवं न्यास-विनियोगादि, मन्त्रो के देवताओं का ध्यान, पूजा, जपादि मन्त्रशुद्धि है।

व्रत, जप, उपवास, तपादि में पूजाका अति महत्त्व है। मानसिक पूजाको श्रेष्ठ माना गया है, क्योंकि वह सरल है, भावात्मक है। अपने इष्टदेवताकी मूर्तिको मनमें बसा ले। जहां आपको भाव आ जाए, पूजा करलो। मनोमयी मूर्ति का प्रमाण शास्त्रोक्त है। मनमें मूर्तिका ध्यान करके, निर्माण करो, फिर भाव करके अपने प्रियतम को, गंध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्यादि उपचार समर्पित करनेका भाव करें। पूजनोपरान्त करमाला या अक्षमाला से जप-निवेदनादि करों। प्रवासादि में आपको कुछ भी साथ ले जानेकी आवश्यता नहीं। तीर्थोमें भी आप विग्रह के सामने यह पूजा कर सकते है, जो परमात्माको सदैव स्वीकार्य रहेगी।

एवं कृते मनुष्याणां वाञ्छासिद्धिर्भवेद्ध्रुवम्।
विशेषत: कलियुगे लघूपायोऽस्ति भूतले॥२४॥

इस प्रकार, पृथ्वीपर, विशेष करके, कलियुगमें मनोवांछित फल देनेवाला ये अति सरल एवं लघू उपाय कहा है। अन्ययुग की अपेक्षा कलियुग में किया व्रत-जप-तप-यज्ञादिका फल सविशेष मिलता है, क्योंकि युगप्रभाव के कारण जब, मानवकी वृत्तियां भोगप्रधान बनी हो और देहासक्ति बढ गई हो, इस परिप्रेक्ष्यमें भी परमात्मामें मन लगाना उत्तम माना जाता है।

इति श्री स्कन्दपुराणे रेवाखण्डे

सूत-शौन-संवादेसत्यनारायणव्रत कथायां प्रथमोऽध्याय:॥

यहां प्रथमाध्याय में व्रतका विधि-विधान, माहत्म्य एवं व्रतकथामें वर्णित उदात्त चरित्रोंका परिचय कराया है । हमारे महामनिषियोंने-ऋषियोंने, वन-उपवनोंमें तप करके जो, मानवकल्याण के लिए उत्तम प्रणाली-धर्म का निर्देशन किया है, सादर वंदनपूर्वक समझनेका प्रयास करें ।

इसी श्रृंखलामें सत्यनारायम व्रत कथा संशय निवारण भाग-२ शीघ्र हि प्रकाशित होगी, प्रधानतया भगवानका आप्तकामत्व, सगुण-निर्गुण, मूर्त की आवश्यकता, अवतार लेना भगवान ब्राह्मणप्रिय, ब्राह्मणोंके द्रोह का कारण एवं स्वजाति गौरव इत्यादिके सहित कथान्तर्गत संशयोंका निवारण तर्क ऐवं वैज्ञानिक अभिगम से किया है ।

निम्नदर्शित लिंक परसे हमारे अन्य प्रकाशित साररूप लेख आप डॉउनलोड कर सकते है । जहांसे कुछ शास्त्रीय संदर्भ भी मिलेंगे-

https://www.scribd.com/document/ 395277585/Dharma-Avm-Ishwar
https://www.scribd.com/document/ 395277736/Mantra-Shastra
https://www.scribd.com/document/ 395278345/janoi
https://www.scribd.com/document/ 395278556/Guru
https://www.scribd.com/document/ 422059596/वैदिक-संस-कृति-का-चीरहरण
https://www.scribd.com/document/ 395277477/वेदो-नारायण

संपर्क एवं पुस्तक प्राप्ति

पण्डित परन्तप प्रेमशंकर (सिद्धपुर)

मो.9898367174, ppp.sidhpur@gmail.com

डी.सी.५, प्लोट नं.१०८, आदीपुर – कच्छ ३७०२०५

बी, ४०१, शुभम् रेसीडन्सी, टी.पी.१०, पालरोड, सुरत
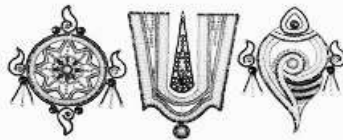
परिशिष्ठ - १

ब्राह्मणों की उत्पत्ति कब और कैसे....

हम यहां जो चर्चा करेंगे वह शास्त्राधारित हि करेंगे । **अवतीर्णोजगन्नाथः शास्त्ररूपेण वै प्रभुः (शाण्डिल्य स्मृ ४.११३), श्रुतिस्मृती ममेवाज्ञ - परमार्थाय शास्त्रीतम् - श्रुतिस्मृति ममैवाज्ञे, शास्त्रपूर्वके प्रयोगे अभ्युदयः** शास्त्र भगवान की आज्ञा है । यथा शास्त्रोक्त विधान से ही परम श्रेयस् - कल्याण होता है । **शास्त्रंतु अन्त्य प्रमाणम्** शास्त्र अंतिम प्रमाण है । शास्त्र स्वयं भगवान की आज्ञा शास्त्र को हि अंतिम प्रमाण मानते है ।

आदि कालमें परमात्माने सृष्टि बनाई ।**स एकाकी न रमते। स द्वितीयमैच्छत्। स आत्मानं द्वेधा पातयत्। पतिश्च पत्नीश्चाभवत् अर्धो वा एष आत्मनः पत्नि** महो.१.३। **एकोऽहं बहु स्याम्-** छां.६.३.२।**अर्धोवा एष आत्मनो यत् पत्नी** —तै.ब्रा.६.१.५ **सोऽकामयत् - एकोऽस्मि बहुस्याम्, इयमेवात्मानं द्वेधाऽपातयततः पतिश्च पत्नी स्त्री पुमांसौ परिष्वाक्तौ स । अथैतस्य मनसो द्यौः शरीरं....तौ मिथुनां(गूं)समैतां, ततः प्राणोऽजायत, स इन्द्रः स एषोऽपत्नः । द्वितीयो वै सपत्नो नास्य सपत्नो भवति य एवं वेद ।। सवै नैव रेमे, सा आत्मानं द्वेधा आपतयत, पतिश्च पत्नी चाभवताम् । इयमेवात्मानं द्वेधाऽपातयततः पतिश्च पत्नीचाभवताम् - एकैवेत्थं पराशक्तिस्त्रिधा सा तु प्रजायते - शिवसूत्रविमर्शिनी- मालिनी वार्त्तिकम् । इयमेवात्मानं द्वेधाऽपातयततः पतिश्च पत्नी स्त्री पुमांसौ परिष्वाक्तौ स । इयमेवात्मानं द्वेधाऽपातयततः पतिश्च पत्नीश्चाभवताम् । मायां तु प्रकृतिं विद्यात् मायाविनं तु महेश्वरम् -** श्वेता. ४-१० **- स्त्रीरूपा वामभागांशा दक्षिणांशः पुमान्स्मृतः** ब्र.वै.पु प्र.खं.२.५५, ये सभी श्रुतिवचन कहते हैं, परमात्मा को एक से अनेक होनेकी कामना हुई और स्वयं की प्रकृति (पत्नि) से संसार रचा । इसकी संगति गीता एवं अनेक पुराणों मे मिलती हैं । **प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया -** गी.४. ६॥ भगवान कहते है कि, मैं अजन्मा और अविनाशीस्वरूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियोंका सर्जन किया । सृष्टिमें ८४ लाख योनियां है। **चतुरशीति लक्षाणि चतुर्भेदाश्च जन्तवः । अण्डजाः स्वेदजाश्चैव उद्भिज्जाश्च जरायुजाः॥ सर्व्वेषामेवजन्तूनां मानुषत्वंसुदुर्लभम् -** श्रीगरुडपुराणे **॥**

जलजा नव लक्षाणि स्थावरा लक्षविंशतिः । कृमयो रुद्रसङ्ख्याकाः पक्षिणां दशलक्षकम् ॥ त्रिंशल्लक्षाणि पशवश्चतुर्लक्षाणि मानुषाः । सर्व्वयोनिं परित्यज्य ब्रह्मयोनिं ततोऽभ्यगात् ॥ बृहद्विष्णुपुराणम् इति चरकेऽपि —९ लाख वानर,९ लाख जलचर, ११ लाख कृमि, १० लाख पक्षी, ३० लाख पशु, ४ लाख मानव तुल्य मानव-देव-गंधर्वादि । ऋषभजीका अपने पुत्रोंको उपदेश - **भूतेषु वीरुद्ध्य उदुत्तमा ये सरीसृपास्तेषु सबोधनिष्ठाः ततो मनुष्याः प्रमथास्ततोऽपि गन्धर्वसिद्धा विबुधानुगा ये || देवासुरेभ्यो मघवत्प्रधाना दक्षादयो ब्रह्मसुतास्तु तेषाम् देवासुरेभ्यो मघवत्प्रधाना दक्षादयो ब्रह्मसुतास्तु तेषाम्। भवः परः सोऽथ विरिञ्चवीर्यः स मत्परोऽहं द्विजदेवदेवः ।। न ब्राह्मणैस्तुलये भूतमन्यत्पश्यामि विप्राः किमतः परं तु यस्मिन्नृभिः प्रहुतं श्रद्धयाहमश्नामि कामं न तथाग्निहोत्रे ॥** श्रीभाग. ५.५.२१-२२-२३।। अन्य सब भूतोंकी अपेक्षा वृक्ष अत्यन्त श्रेष्ठ हैं, उनसे चलनेवाले जीव श्रेष्ठ हैं और उनमें भी कीटादिकी अपेक्षा ज्ञानयुक्त पशु आदि श्रेष्ठ हैं। पशुओंसे मनुष्य, मनुष्योंसे प्रमथगण, प्रमथोंसे गन्धर्व, गन्धर्वोंसे सिद्ध, सिद्धोंसे देवताओंके अनुयायी किन्नरादि श्रेष्ठ हैं ॥२१॥ उनसे असुर, असुरोंसे देवता और देवताओंसे भी इन्द्र श्रेष्ठ हैं। इन्द्रसे भी ब्रह्माजीके पुत्र दक्षादि प्रजापति श्रेष्ठ हैं, ब्रह्माजीके पुत्रोंमें रुद्र सबसे श्रेष्ठ हैं। वे ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिये ब्रह्माजी उनसे श्रेष्ठ हैं। वे भी मुझसे उत्पन्न हैं और मेरी उपासना करते हैं, इसलिये मैं उनसे भी श्रेष्ठ हूँ। परन्तु ब्राह्मण मुझसे भी श्रेष्ठ हैं, क्योंकि मैं उन्हें पूज्य मानता हूँ ॥ २२ ॥ [सभामें उपस्थित ब्राह्मणोंको लक्ष्य करके] विप्रगण ! दूसरे किसी भी प्राणी को मैं ब्राह्मणों के समान भी नहीं समझता, फिर उनसे अधिक तो मान ही कैसे सकता हूँ। लोग श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंके मुखमें जो अन्नादि आहुति डालते हैं, उसे मैं जैसी प्रसन्नतासे ग्रहण करता हूँ वैसे अग्निहोत्रमें होम की हुई सामग्रीको स्वीकार नहीं करता ॥ २३ ॥ **भूतानां प्राणिन: श्रेष्ठा: प्राणिनां बुद्धिजीविन:। बुद्धिमत्सु नरा: श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणा: स्मृता:** मनु-१.९७ । इन सभी योनियों में मानव और मानव में भी ब्राह्मण को श्रेष्ठ माना है । यहां जो चर्चा हो रही है वह विश्व के प्राचीनतम वेद —पुराण —स्मृतियों के आधार पर है —जिसकी प्रामाणिकता सर्वोपरि है ।

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसव: समिंधतां पुनर्ब्रह्मणो वसुनीथ यज्ञै: (यजु.१२.४४) इत्यादि में भी आदित्य आदि देवताओं के बाद ब्राह्मणोंका ही नाम लिया गया है। निम्न श्रुति वचनानुसार सृष्ट्यारम्भ मे ब्राह्मणों का प्रथम प्रादुर्भाव हुआ। **अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः। यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ ५ ॥ दे.सू-ऋग्वेद ।। जीवः स्वकृत पुण्येन ब्रह्मवंश समुद्भवः, सर्गादौ प्रथमे कल्प..ब्रह्मर्षिर्बाह्मणोत्तपत्तिं कृत्वा सृष्टिमवर्धयत्.. गौड संहिता । ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्य: कृत:। उरू तदस्य यद्वैश्य: पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥** सृष्टि के आदि कल्पमें परमात्माने ब्राह्मणों को उत्पन्न किया। ब्राह्मण परमात्मा के मुखारविन्दसे उत्पन्न हुए और वे स्वयं परमात्माका मुखारविंद ही है, यथा ब्रह्मभोजन एवं ब्रह्मभाषण का शास्त्रमें अति महत्व बताया है। (ब्राह्मणा यानि भाषन्ते मन्यते तानि देवता —ब्रह्मवाक्यं जनार्दनम् कहा गया है)। **यावद्विप्रगतंशास्त्रं शास्त्रत्वंतावदेव हि। विप्रेतर गतंशास्त्रं अशास्त्रत्वं विदुर्बुधाः ।। कौ.सं।। आत्मोद्धारका शक्तिः परोद्धारकतास्तथा।** ब्राह्मणका महत्व इसलिए है उसके पास दो शक्तियां जन्मजात होती है - आत्मोद्धारक - स्वयं का कल्याण करनेकी, परोद्धारक - अन्यका कल्याण करनेकी। यथा कहा है कि, शास्त्र जबतब ब्राह्मण के मुख से उद्भासित होता है तबतक ही शास्त्र है, अन्यथा शास्त्रकी कोई प्रभुता नहीं होती।

कुछ विद्वान एवं सम्पदाय **चातुर्वर्ण्यं मयासृष्टं गुणकर्म विभागशः** - के गीता का संदर्भ देकर कहते है —ब्राह्मणादि कर्मों के अनुसार सिद्ध होता है। यहां मात्र कर्म ही नहीं, गुण का भी स्विकार किया है। किसी निजी स्वार्थसे या शास्त्रमे अज्ञानतावश ही ऐसा मिथ्या अर्थघटन करते है। मार्ग पर यदि ट्राफिक जाम हो जाता है और कोई दो-तीन व्यक्ति अपने वाहनसे नीचे उतरकर वाहनव्यवहार को संचालन-निर्देशन करते है, तो वे ट्राफिक अधिकारी नहीं बन जाता, वह किसी का चालन नही काट सकता। कोई न्याय प्रणालीको जानता है तो क्या किसीको सजा सूना सकता है? कानून जानने से कोई बेरिस्टर नहीं बन जाता, आरोग्य शास्त्र जानने मात्र से मेडिकल प्रेक्टीशनर नहीं बन सकता। ऐसे ही कर्माधारित वर्ण व्यवस्था सर्वदा शास्त्रोचित नहीं है। **दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः।**

उत्साद्यन्तेजातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः गीता १.४३। भगवान ने गुण शब्द प्रथम लगाया है —**गुणा गुणीषु वर्तन्ते** —गुण स्वयं को प्रकाशित होने के लिए उपयुक्त आश्रय की आवश्यकता रहती है, जैसे सुंदरता या गंध को पुष्पका आश्रय करना पडता है । एक व्यक्ति दिवसमें चार प्रकार के कर्म करता है, प्रातः संध्यावंदन, देवतार्चन, स्वाध्यायादि करता है तो प्रातःकाल में ब्राह्मण, अपने परिवार की सुरक्षा के लिए कर्म करता है, तब क्षत्रिय, जब नोकरी, सेवा या व्यापार करता है, तब वैश्य, एवं अपनी पत्नि को, या माता को गृहकार्य में मदद करता है, तब शूद्र - ये तो वर्णशंकरत्व है । स्त्रीयां, जो घर में बरतन साफ करती है, झाडू लगाती है, वे क्या शूद्र ही रहेगी, बहुधा स्त्रीयोंको, अपने गृहस्थ कार्यों के कारण एक ही वर्णमें रखोगे ? भगवानने गुण शब्द वैसे ही नहीं लगाया, कि छन्द बैठ जाए । आगे १८ अध्याय में फिर से कहा है - **ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप। कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः।।** , अब कर्मो का विभाजन किस आधार से भगवान करते है - गुण के । हर कोई प्राणी ब्राह्मण बन सकता है किन्तु इसके लिए प्रबल पुण्योदय की आवश्यकता है । श्रुति में ब्राह्मणादि के जन्म के लिए निम्नानुसार प्रमाण दिए है ।

अब कर्मो का विभाजन किस आधार से भगवान करते है - गुण के। हरकोई प्राणी ब्राह्मण बन सकता है, यद्यपि इसके लिए प्रबल पुण्योदय की आवश्यकता है । श्रुति में ब्राह्मणादि के जन्म के लिए निम्नानुसार प्रमाण दिए है ।

जब प्रबल पुण्योदय होता है तब ब्राह्मण कुलमें जन्म होता है —सूना है १००० वर्षोके संचित पुण्यों के उपरान्त ही ब्राह्मण बननेका सद्भाग्य प्राप्त होता है, यथा ब्राह्मण को भूदेव कहते है । **गायत्र्याब्राह्मणं निरवर्तयत्त्रिष्टुभा राजन्यं जगत्या वैश्यम् -** अथर्ववेद - ७.४३.९। **योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनाम् । स्थाणुमन्येनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् -** कठ.२.२.७। **कर्मानुसारेण जन्म प्रपद्यन्ते जीवाः- पुण्यकर्मभिः उत्तमं पापकर्मभिः नीचं जन्म, पुण्यपापमिश्रणात् मनुष्यजन्म च प्राप्यते। तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशोह यते रमणीयां योनिमापद्योरन्ब्राह्मण योनिं वा क्षत्रिय योनिं वा वैश्ययोनिं वाथ ...** छां.उप. ५.१०.७। ये सब

श्रुति प्रमाण समझने का सामर्थ्य, बहुश्रुत कथाकार या शिबिरोंवाले योगीके पास नहीं है । हमारा जन्म कौनसे कुल में होगा, कौन-सी योनि प्राप्त होगी, यह हमारे पूर्वजन्मकृत कर्मो के आधार पर ही निर्णित होता है, अगला जन्म इस जन्म के कर्माधीन है । **जीवःस्वकृतपुण्येन ब्रह्मवंश समुद्भवः** - गौडस्मृति । गीतामें भगवान ने कहा है **शूचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोभिजायते** । अनेक शुभकर्म के संयोग से योगभ्रष्ट, उत्तम योनिमें जन्म लेता है । महाभारत में भी कहा है - **ब्राह्मण्यांब्राह्मणाज्जातो ब्राह्मणस्यान्न संशयः** ब्राह्मण एवं ब्राह्मणी के द्वारा उत्पन्न संतान ब्राह्मण ही है, उसमें कोई संशय नहीं ।अनन्त जन्मोंके पुण्यार्जनसे ब्राह्मणकुलमें जन्म मिलता है । **स्थूलानि सूक्ष्माणि बहूनि चैव रूपाणि देही स्वगुणैर्वृणोति । क्रियागुणैरात्मगुणैश्च तेषां संयोगहेतुरपरोऽपि दृष्टः-** श्वेता.उप. ५-१२। जीवात्मा अपने अर्जित कर्मसंस्कारोके अधीन अनेक योनिमें जन्म लेता हैं । **कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु-** गी.१३.२१। **त्रयोलोकाः त्रयोवेदाः आश्रमाश्चत्रयोऽग्नयः । एतेषां रक्षणार्थाय संसृष्टा ब्राह्मणाः पुरा** । महाभारत में भी कहा है - वट के बीज से वट ही बनता है, किसान जो बीज जमीन में डालता है वैसा ही वृक्ष बनता है । जाति निर्धारण मे बीज का महत्त्व ज्यादा है । ब्राह्मण एवं ब्राह्मणी के द्वारा उत्पन्न संतान ब्राह्मण ही है, उसमें कोई संशय नहीं । योग भी कहता है **सति मूले जात्यायुर्भोगाः** अनन्त जन्मार्जित पुण्यसे हि ब्राह्मणकुलम मिलता है । **तपः श्रुतञ्च योनिश्चेत्येतद् ब्राह्मणकारणम्** - महाभाष्य २/२/६ ।। यहां महाभाष्य एवं योग दोनों ने ही योनि-कुलको प्राधान्य दिया है । **ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनैवमुत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः** (हारीतस्मृतिं १, अ. १५) अर्थात् ब्राह्मणी के रज और ब्राह्मण के वीर्य से जो विधिवत् उत्पन्न होता हैं उसे ब्राह्मण कहते हैं ।

ब्राह्मणों का महत्त्व एवं लक्षण....

महत्त्व - **ब्राह्मणत्वस्य हि रक्षणेन रक्षितः स्याद् वैकिको धर्मः** श्रीमद् भागवतादि अनेक पुराण एवं स्मृतियों में ब्राह्मणद्वेष को अति निष्कृष्ट माना है । भगवान रामजी ने कहा है - **विप्रप्रसादाद्धरणीधरोहं**, रामचरित मानस में भगवान राम भी कहते हैं - **विप्र वंश करि यह प्रभुताई , ते नर**

प्रान समान मम, जिनके द्विज पद प्रेम, पुण्य एक जगमें नहीं दूजा, मन-क्रम-वचन विप्रपद पूजा, रामचरित के कर्ता श्रीतुलसीदासजी विद्वान ब्राह्मण थे और धर्मशास्त्र के ज्ञाता थे और इसलिए कोई शास्त्ररहित बात ही नहीं लिखी । श्रीकृष्ण भागवत के दशमस्कंध में कहते है, **नन्वस्य ब्राह्मणा राजन्...कृष्णस्यजगदात्मज..**। प्रमाण तो श्रुति से प्रारम्भ करके स्मृति पुराणो पर्यन्त सहस्रों मिलेंगे । **बंदउँ प्रथम महीसुर चरना** - रामचरितमानस । भ गवानने भागवत में कई स्थान पर बताया है कि ब्राह्मण देवताओं के लिए भी पूजनीय है और स्वयं ने भी ब्राह्मणका पादप्रहार स्वीकार किया है । रामचरित मे प्रथम ब्राह्मण को वंदन किया है, स्वयं श्रीराम कहते है विप्रचरण से बढकर कोई पूजा नहीं है ।

सनातन वैदिक धर्म व सभ्यता के चार आधारस्तंभ है - वेद, ब्राह्मण, गाय एवं यज्ञ और इन सभी का संवर्धन ब्राह्मण द्वारा ही होता है। ऋषभजीका अपने पुत्रोंको उपदेश - **भूतेषु वीरुद्भ्य उदुत्तमा ये सरीसृपास्तेषु सबोधनिष्ठाः ततो मनुष्याः प्रमथास्ततोऽपि गन्धर्वसिद्धा विबुधानुगा ये ॥ देवासुरेभ्यो मघवत्प्रधाना दक्षादयो ब्रह्मसुतास्तु तेषाम् देवासुरेभ्यो मघवत्प्रधाना दक्षादयो ब्रह्मसुतास्तु तेषाम् ।भवः परः सोऽथ विरिञ्चवीर्यः स मत्परोऽहं द्विजदेवदेवः॥ न ब्राह्मणैस्तुलये भूतमन्यत्पश्यामि विप्राः किमतः परं तु यस्मिन्नृभिः प्रहुतं श्रद्धयाहमश्नामि कामं न तथाग्निहोत्रे** - श्रीमद्भागवत ५.५.२१-२२-२३ ।। अन्य सब भूतोंकी अपेक्षा वृक्ष अत्यन्त श्रेष्ठ हैं, उनसे चलनेवाले जीव श्रेष्ठ हैं और उनमें भी कीटादिकी अपेक्षा ज्ञानयुक्त पशु आदि श्रेष्ठ हैं। पशुओंसे मनुष्य, मनुष्योंसे प्रमथगण, प्रमथोंसे गन्धर्व, गन्धर्वोंसे सिद्ध और सिद्धोंसे देवताओंके अनुयायी किन्नरादि श्रेष्ठ हैं ॥ २१ ॥ उनसे असुर, असुरोंसे देवता और देवताओंसे भी इन्द्र श्रेष्ठ हैं। इन्द्रसे भी ब्रह्माजीके पुत्र दक्षादि प्रजापति श्रेष्ठ हैं, ब्रह्माजीके पुत्रोंमें रुद्र सबसे श्रेष्ठ हैं। वे ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिये ब्रह्माजी उनसे श्रेष्ठ हैं। वे भी मुझसे उत्पन्न हैं और मेरी उपासना करते हैं, इसलिये मैं उनसे भी श्रेष्ठ हूँ। परन्तु ब्राह्मण मुझसे भी श्रेष्ठ हैं, क्योंकि मैं उन्हें पूज्य मानता हूँ ॥ २२ ॥ (सभामें उपस्थित ब्राह्मणोंको लक्ष्य करके) विप्रगण! दूसरे किसी भी प्राणी को मैं ब्राह्मणोंके समान भी नहीं समझता, फिर उनसे अधिक तो मान ही कैसे सकता हूँ। लोग श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंके मुखमें जो अन्नादि

आहुति डालते हैं, उसे मैं जैसी प्रसन्नतासे ग्रहण करता हूँ वैसे अग्निहोत्रमें होम की हुई सामग्रीको स्वीकार नहीं करता ॥ २३ ॥ **उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य शाश्वती । स हि धर्मार्थं उत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते - भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः । बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः - विधाता शासिता वक्ता मैत्रो ब्राह्मण उच्यते। तस्मै नाकुशलं ब्रूयान्न शुष्कां गिरमीरयेत्॥ अग्न्याभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् यो ह्यग्निः स द्वोजो विप्रैर्मन्त्रदर्शिभिरूच्यते** —मनु । **यो हि यां देवतामिच्छेत् समाराधयितुं नरः। ब्राह्मणान् पूजयेद् यत्नात् सतस्यां तोषहेतुतः॥ द्विजानां वपुरास्थाय नित्यं तिष्ठन्ति देवताः। पूज्यन्ते ब्राह्मणालाभे प्रतिमादिष्वपि क्वचित् ॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तत् तत् फलमभीप्सुभिः ।द्विजेषु देवता नित्यं पूजनीया विशेषतः॥ विभूतिकामः सततं पूजयेद् वै पुरंदरम् ।ब्रह्मवर्चसकामस्तु ब्रह्माणं ब्रह्मकामुकः** कू.पु.**२६.३५-३८ ॥ ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते । ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये॥ अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत्। प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत्** मनु-**१३७॥** सभी प्राणीयों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है । अग्नि या देवपूजा के पूर्व ब्राह्मण का पूजन करना चाहिए । जिस तरह यज्ञ-होम-के लिए हवन कुंड में लाई या बिना लाई अग्नि महादेवता है, उसी प्रकार विद्वान या अविद्वान ब्राह्मण भी महान देवता हैं। ब्राह्मण का जन्म धर्मार्थ - वेद-यज्ञ प्रसारार्थ हुआ है । धर्मरूपी कोष का वह अधिष्ठाता है, हर व्यक्ति को स्वनिःश्रेयस (कल्याण) के लिए ब्राह्मणों का आदर करना चाहिए । **दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो न तु शूद्रो जितेन्द्रिय** पराशरस्मृति। **पूजिय विप्र सकल गुणहीना। नहिं न शूद्र गुण ज्ञान प्रवीना॥ दृष्टउ धेनु दुही सुनि भाई। साधु रासभी दुही न जाई। पूजिय विप्र सकल गुणहीना। नहिं न शूद्र गुणज्ञान प्रवीना॥ न ब्राह्मणान्मे दयितं रूपमेतच्चतुर्भुजम्। सर्ववेदमयो विप्रःसर्वदेवमयोह्यहम्॥** ब्राह्मण चाहे अविद्वान हो, दुःशील हो, तथापि उसका अपमान नहीं करना चाहिए, क्योंकि इसके पाप शीघ्र ही आपमें संक्रमित होंगे, इसका जन्म अनेक पूर्वजन्मकृत पुण्यों की कमाई है, श्मशान का अग्नि ग्राह्य न होनेपर भी उसमें दाहकता, उष्णता एवं तेज तो होता ही है । यह बात ब्राह्मणों के लिये ही कही गयी है। **ब्राह्मणो जन्मना श्रेयान्सर्वेषां प्राणिनामिह। विद्यया**

तपसा तुष्व्या किमु मत्कलया युतः।। किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि इस प्रकार का गुणहीन ब्राह्मण स्वयं भी कल्याण का पात्र हो सकता है। उसे स्वयं तो नरक ही भोगना पड़ेगा। उसकी अपेक्षा तो स्वधर्मनिष्ठ शूद्र ही सद्गति होनी अधिक सम्भव है। इसी भाव को लक्ष्य में रखकर श्रीमद्भागवत में कहा है-**विप्राद्द्विषड्गुणयुतादर विन्दनाभपादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम्मन्ये। विप्रोधदर्शनात क्षिप्रम् क्षीयन्ते पापराशयः ।** इस प्रकार श्रीमद्भागवत में कहीं तो गुणहीन ब्राह्मण को भी सर्वथा पूजनीय बतलाया गया है और कहीं भगवद्भक्तिहीन द्वादश गुण-विशिष्ट ब्राह्मण की अपेक्षा भगवच्चरणानुरागी श्वपच की उत्कृष्टता दिखलायी गयी है। **वंदनान्मङ्गलावाप्तिरर्चनादच्युतं पदम् - ब्राह्मणं दशवर्षंतु शतवर्षं तु भूमिपम् । पितापुत्रौ विजानीयाद् ब्राह्मणस्तु तयोः पिता - मनु** ।।अर्थात् ब्राह्मणो के समूह के दर्शन मात्र से ही पाप के डुंगर भी नाश हो जाते है और ब्राह्मणो के पैर छू लेनेसे ही कल्याण हो जाता है । सामान्यतया राजा प्रजाके लिए पितातुल्य होता है, किन्तु, सौ वर्षके राजा के लिए दश वर्षका ब्राह्मण पितातुल्य है । ब्राह्मणो का पूजन करनेसे ईश्वरकी प्राप्ति का मार्ग खुल जाता है ।

लक्षण - गीता में भी लिखा हैं कि **शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् १८.४२॥** ब्राह्मण शान्त, पवित्र, उदार, कारूण्य स्वभावका, तपस्वी, ज्ञान-विज्ञान में रत एवं सदाचारी होना चाहिए । वेद, यज्ञादि धर्म वृत्ति मे सदैव रत रहते हुए संतुष्ट एव नित्यकर्म करनेवाला तथा परमात्मामें पूर्ण श्रद्धावाला होना चाहिए । शिखा-सूत्र रखनेवाला, स्नान-संध्यादि, बलि-वैश्वदेव करनेवाला ब्राह्मण सर्वथा मंगलकारी होता है ।

ब्राह्मणों के कर्तव्य-कर्म.....

जब ब्राह्मण का बडा महिमा श्रुति-स्मृति-पुराणों मे वर्णित है, तब उसके कुछ कर्तव्य भी होंगे ? **ब्रह्मतत्त्वं न जानाति ब्रह्मसूत्रेण गर्वितः। तेनैव स च पापेन विप्रः पशुः उदाहृतः ।** मात्र जनेऊ धारण करके गर्वित होनेवाला ब्राह्मण सदैव नींदनीय है । उसके जन्मकी कोई सार्थकता नहीं होती। **ब्राह्मणस्य तु देहोऽयं न कामार्थाय जायते । इह क्लेशाय तपसे प्रेत्य**

त्वनुपमं सुखम् - महाभारत १२.३२१.२३ । **त्रयोलोकाः त्रयोवेदाः आश्रमाश्चत्रयोऽग्नयः । एतेषां रक्षणार्थाय संसृष्टा ब्राह्मणाः पुरा ।** ब्राह्मण का जन्म वेदों के संरक्षणार्थ हुआ है । इसलिए ही सन्ध्यावंदनादि तप ब्राह्मण के लिए अनिवार्य है । ब्राह्मणेनाकारणो धर्म: षडंगो वेदोऽधययो ज्ञेयश्च - वेद-वेदान्ता शिक्षा-कल्पादि षडङ्ग पढना प्रथम कर्तव्य है । ब्राह्मण के लिए **श्रुतिस्मृती उभे नेत्रे ब्राह्मणस्य प्रकीर्त्तिते। एकया रहित: काणो द्वाभ्यामंध उदाहृत: -** हारीत । ब्राह्मणों को नियत समयपर संध्यादि नित्यकर्म करने चाहिए - **स्वकाले सेविता संध्या नित्यं कामदुधा भवेत् । अकाले सेविता च संध्या वन्ध्या वधूरि व** ।। याज्ञवल्क्यजी ने भी आचाराध्याय मं कह दिया हैं कि **जपन्नासीत्सावित्रीं प्रत्यगातारकोदयात्॥ संध्यां प्राक्प्रातरेवंहि तिष्ठेदासूर्यदर्शनात्।अग्निकार्यं तत: कुर्यात् सन्ध्ययोरुभयोरपि,** २४-२५॥ अर्थात् सन्ध्या समय पश्चिम मुख बैठ कर तारा के निकलने तक और प्रात: पूर्व मुख बैठकर सूर्योदय पर्यन्त गायत्री जप करे। उसके बाद दोनों सन्धिकाल में अग्निहोत्र करे। श्रुतियों में यही अनुशासन (आज्ञा) अन्यत्र भी हैं, जैसा कि शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थों में लिखा हैं कि **स्वाधयायो ध्येतव्य: - अहरह: सन्ध्यामुपासीत - अग्निहोत्रीं जुहूयात्** । कि मनुजी ने कहा हैं कि **अध्यापनमध्यायनं याजनं यजनं तथा। दानं प्रतिग्रहश्चैव षट् कर्माण्यग्रजन्मन:॥** अर्थात् पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान और प्रतिग्रह ये छह कर्म ब्राह्मणों के हैं"। उसका भी यही आशय हैं कि अध्यायन (पढ़ना), दान और यज्ञ करना यही तीन कर्म धर्म के लिए हैं, शेष तीन तो जीविका के लिए हैं। अत्रिजी भी लिखते हैं कि **कर्म विप्रस्य यजनं दानमध्यायनं तप:। प्रतिग्रहो धयापनं च याजनं चेति वृत्तय:॥१३॥** तात्पर्य यह हैं कि ब्राह्मण के कर्म (धर्म) तो यज्ञ, दान और अध्यायन ये तीन ही हैं, प्रतिग्रह, पढ़ाना और यज्ञ कराना ये तीन तो जीविकाएँ हैं। ब्राह्मण के धार्मर्थक कर्म यज्ञ, अध्यायन और दान तीन ही हैं। पराशर स्मृति के प्रथमाध्याय में भी लिखा हैं कि **संध्या स्नानं जपो होमो देवतानां च पूजनम्।आतिथ्यं वैश्वदेवं च षट्कर्माणि दिने दिने॥ ३९॥** मनुजी अन्त में भी 12वें अध्याय में लिखते हैं - **यथोक्तान्यपि**

कर्माणि परिहाय द्विजोत्तामः। वेदाभ्यासे शमे च, स्यादात्मज्ञाने च यत्नवान्॥ ऐसे सेंकडो प्रणाण उपलब्ध है, जो शास्त्रको नहीं मानते है, इसके लिए चर्चा हि व्यर्थ है । भारतीय कानून व्यवस्था भारतीय संविधानानुसार होती है, पाकिस्तानके संविधानुसार नहीं होती, वैसे हि सनातन वैदिक सभ्यता का आधार, हमारे शास्त्रग्रंथ हि है।

कुछ ३०० से अधिक वर्ष पर्यन्त विधर्मी एवं आक्रान्ताओ से हम शासित रहे । उन्होंने सोचा कि यदि भारत पर राज करना हो और महाभारत कालीन या अशोककालीन भारत जैसी महासत्ताको तोडना होतो ब्राह्मणों का अस्तित्व मीटाना ही पडेगा और उसी दिशामें तीनसो से अधिक वर्ष वे कार्यरत रहे । अपनी शिक्षाप्रणाली को ध्वस्त किया और आज आजादि के कुछ ७० साल के बाद भी मानसिक पराधीनता से उपर नहीं उठ पाए हैं ।

कुछ तो कलिप्रभाव भी है, कुछ विद्वानों की उदासीनता । आज सम्प्रदाय बढ गए है, कोई समाज, कोई परिवार, कोई आश्रम, सबने अपनी अपनी दुकानें खोल दी है । अनेक वक्ता व्यासपीठ की मर्यादाओं को छोडकर शास्त्रविरूद्ध पाखण्ड धर्मका प्रचार करते है । अपनी अपनी वाक्पटुता से जनसामान्य को मार्गभ्रमित करते है, जो न करनेकी शास्त्र आज्ञा करता है - शास्त्र परमात्मा का आदेश है **-न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानांकर्मसंगिनाम् । जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्** गी.**३.२६।** समर्थ गुरू ब्रह्मतत्त्वकी शास्त्रविरूद्ध व्याख्या कदापि नहीं करते। **तस्माच्छात्रंप्रमाणंते कार्याकार्यव्यवस्थितौ, ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तंकर्मकर्तुमिहार्हसि** गी.**१७.२४। परमार्थाय शास्त्रीतम् ।** श्रुति भी कहती हैं कि **शास्त्रज्ञोऽपि स्वातंत्रेण ब्रह्मज्ञानान्वेषणं न कुर्यात्** मु.उप। **शास्त्रं तु अन्त्यप्रमाणम्।** समर्थ होते हुए भी, शास्त्रविरूध्द नहीं बोलना ये शास्त्र की मर्यादा है। आज पाखण्ड संप्रदाय बढ रहे है, जो अपनी दुकान चलाने साम्प्रदायिक कट्टरवाद बढाते है, कलके लिए भारत को आतंकबाद से भी ज्यादा खतरा इनसे है । **बहुदाम सँवारहिं धाम जति । विषया हरि लीन्हि न रहि बिरती। तपसी धनवंत दरिद्र गृही । कलि कौतुक तात न जात कहीं । धनवंत कुलीन मलीन अपी । द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी । नाहि मान**

पुरान न बेदही जो । हरि सेवक संत सही कलि सो । कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सद्ग्रंथ । दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रकट किए बहु पंथ। कलियुग में अरबो-खरबोकी संपत्ति के मालिक-ट्रस्टी संत महंतो की कमी नहीं होगी । अखण्ड सनातन सभ्यताको अपनी दुकान चलाने हेतु छोटी छोटी मान्यता —विचारधाराओंमे बटोरकर —दंभ व स्वार्थयुक्त अनेक छोटे-छोटे संप्रदायोंमें विघटित कर दी हैं । इस परिस्थिति में सुज्ञ प्रजा व विद्वानोंका परम कर्तव्य हैं कि इस पाखण्ड लीला का निरसन करनेकी दिशामें प्रशस्त हों, आज नहीं तो आनेवाला कल इस विघटनके द्वारा सर्वनाश की दिशामें और आंतरिक कलहमें निःसंदेह परिणित होगा ।

हमे दुःख तब हुआ, जब एक प्रसंगमें ब्राह्मण के घरमें, वास्तुयज्ञ में गायत्री हवन चल रहा था । हवनका यजमान ब्राह्मण था, यज्ञका आयार्य अब्राह्मण (शूद्रजातिका), जिसको न तो स्वयं का गोत्र, वेदादि का ज्ञान था, और न थी विधि की योग्यता । यजमान भी शास्त्रमर्यादा से रहित पेंट-शर्ट में आहुति दे रहा था और आने-जाने वाले सभी स्वाहा-स्वाहा कर रहे थे । आगमें कुछ डालनेसे यज्ञ नहीं होता । इसका वैज्ञानिक अभिगम मैने कई जगहपर बताया है । ऐसे विधिहीन यज्ञ विनाशक होते है **विधिहीनस्य यज्ञस्य सद्यः कर्ता प्रणश्यति** । कितना भी विद्वान हो यज्ञानुष्ठान मे अब्राह्मण की पूजा निंदनीय है - **दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो न तु शूद्रो जितेन्द्रियः । पराशर स्मृति - पूजिय विप्र सकल गुणहीना। नहिं न शूद्र गुण ज्ञान प्रवीना।। मनु महाराज कहते है दुःशीलोपि द्विजः पुज्यो, न तु शूद्रो जितेन्द्रिय** । कहा गया है **स्त्रियः कामेन नश्यंति ब्राह्मणो हीन सेवया । अपूज्या यत्र पूज्यन्ते , पूजनीयो न पूज्यते । त्रीणि तत्र प्रवर्तन्ते , दुर्भिक्षं मरणं भयम् ।।** स्कन्द-पुराण । ऐसे यज्ञ ब्राह्मण के पतन के कारण है । जहां पर अपूज्य का आदर होता है पूज्यनीय का अनादर होता है वहां विनाश ही होता है ।

पंच गौड, पंच द्रविड....

पूरे ब्रह्मांडकी उत्पत्तिके मूल में भगवान शीव है । शिव के कारण ही है सभी धर्मों की उत्पत्ति मानते है, शिव जगत के गुरु और परमेश्वर हैं।

शिवसे ही गुरु और शिष्य परंपरा की शुरुआत की थी जिसके चलते आज भी नाथ, शैव, शाक्त आदि सभी संतों में उसी परंपरा का निर्वाह होता आ रहा है। मान्यता अनुसार सबसे पहले उन्होंने अपना ज्ञान सप्त ऋषियों को दिया था। सप्त ऋषियों ने शिव से ज्ञान लेकर अलग-अलग दिशाओं में फैलाया और धरती के कोने-कोने में शैव धर्म, योग और ज्ञान का प्रचार-प्रसार किया। इन सातों ऋषियों ने ऐसा कोई व्यक्ति नहीं छोड़ा जिसको शिव कर्म, परंपरा आदि का ज्ञान नहीं सिखाया हो। आज सभी धर्मों में इसकी झलक देखने को मिल जाएगी। सप्त ऋषि ही शिव के मूल शिष्य है। गोत्र परम्परा दो प्रकार से बनी है (१) बिन्दु —पिता-पुत्र (२) नाद गुरू-शिष्य ।

कश्यपोत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रोथ गौतमः। जमदग्निर्वसिष्ठश्च सप्तैते ऋषयः स्मृताः॥ दहंतु पापं सर्व गृह्नन्त्वर्ध्यं नमो नमः॥ इस श्लोक में कश्यप, अत्रि, भारद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, वसिष्ठ ऋषियों के नाम बताए गए हैं। ये सप्तर्षिओंने भगवान शिवसे शिक्षा-दिक्ष ग्रहण करी । कोई भी विद्या उनसे अछूति नही रही, सभी वेद्या-ज्ञान के वे आदि धारक-प्रचारक रहे यथा इनके नामों के जापसे सभी पाप कर्म नष्ट हो जाते हैं ।

पहले ऋषि हैं कश्यप। कश्यप ऋषि की १७ पत्नियां थी। अदिति नाम की पत्नी से सभी देवता और दिति नाम की पत्नी से दैत्यों की उत्पत्ति मानी गई है। शेष पत्नियों से भी भिन्न-भिन्न जीवों की उत्पत्ति हुई है।

दूसरे ऋषि हैं अत्रि। त्रेतायुग में श्रीराम, लक्ष्मण और सीता वनवास समय में अत्रि ऋषि के आ़श्रम में रूके थे। इनकी पत्नी अनसूया थी। अत्रि और अनसूया के पुत्र भगवान दत्तात्रेय हैं।

तीसरे ऋषि हैं भारद्वाज। इनके पुत्र द्रोणाचार्य थे। भारद्वाज ऋषि ने आयुर्वेद सहित कई ग्रंथों की रचना की थी।

चौथे ऋषि हैं विश्वामित्र। इन्होंने गायत्री मंत्र की रचना की थी। भगवान श्रीराम और लक्ष्मण के गुरु थे। विश्वामित्र ही श्रीराम और लक्ष्मण को सीता के स्वयंवर में ले गए थे।

पांचवें ऋषि हैं गौतम। अहिल्या गौतम ऋषि की पत्नी थीं। गौतम ऋषि ने ही शाप देकर अहिल्या को पत्थर बना दिया था। श्रीराम की कृपा से अहिल्या ने पुन: अपना रूप प्राप्त किया था।

छठे ऋषि हैं जमदग्नि। जमदग्नि और रेणुका के पुत्र हैं भगवान परशुराम। परशुराम ने पिता की आज्ञा से माता रेणुका का सिर काट दिया था। इससे जमदग्नि प्रसन्न हुए और वर मांगने के लिए कहा था। तब परशुराम ने माता रेणुका का जीवन मांग लिया। जमदग्नि ने अपने तप के बल से रेणुका को फिर से जीवित कर दिया था।

सातवें ऋषि हैं वशिष्ठ। त्रेता युगमें ऋषि वसिष्ठ राजा दशरथ के चारों पुत्र राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के गुरु थे। **यह परिशिष्ट ब्राह्मण कौन है, भगवानको प्रिय क्यों है, इत्यादि सुश्पष्ट करनेके लिए है । ॐ श्रीरस्तु ॥**

मेरे प्रेरणास्त्रोत.....

પંડીતજીએ 13 પુસ્તકો લખીને જાગૃતિનો પ્રયાસ કર્યો

કર્મકાંડથી ભરમાવો નહીં, તેની પાછળ રહેલા વિજ્ઞાનને જાણો

वैसे तो, कई पुस्तके विश्वके महत्तम बिक्रीका रेकोर्ड प्राप्त करती है । यद्यपि जिनका भौतिक मूल्य न होनेपर भी जो शीरोधार्य बनती है, अमूल्य होकर भी, वंदनीय बनती है, तब, समझमें आता है कि, इसमें जो अक्षर है, जो लिखावट है, वह परमात्माकी वंदना है या सद्गुरूका अनुग्रह है । अन्यथा, कागज शाही का मूल्य तो समान ही रहता है । जिस प्रकार एक छोटासे कागजका मूल्य कभी २०००/- तो कभी प्रोमिसरीनोट, दस्तावेज या शेर के रूपमें लाखोंमें किया जाता है । कभी बच्चेका खिलौना यो वर्षाके पानी में तैरानेवाली नांव, तो कभी हरिदर्शन करानेवाले शास्त्र, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत्, श्रीगीता या वेदका स्वरूप लेता है, कागज और स्याही भी जब परमात्माका नाम ग्रहण करते है, तो वंदनीय बन जाते है ।

गुरूवर्य प.पू. गं.स्व.नारायणीदेवी पंडित, प.पू.वैद्यशास्त्री पं. प्रेमवल्लभ शर्मा, वेदपुरूष प.पू.पं. राधाकृष्ण शुक्ल, प.पू. स्वामि श्री हंसानन्दजी महाराज के श्रीचरणोंकी वंदना के साथ, मेरा यह स्वल्प प्रयास विद्वज्जन के करकमलों से अनुग्रहित हो, ऐसी भगवान शिवसे प्रार्थना सह... विद्वज्जन चरणानुरागी... पण्डित परन्तप प्रेमशंकर (सिद्धपुर)॥

अन्य प्रकाशित पुस्तके एवं लेख....

१. सन्ध्या-गायत्री-षडकर्म......	गुजराती
२. यज्ञोपवित महत्त्व.............	गुजराती
३. ब्राह्मण एवं वर्णाश्रम..........	गुजराती
४. मूर्तिपूजा नी शास्त्रीयता.......	गुजराती
५. षोडश संस्कार महत्व........	गुजराती
६. शास्त्रपर आक्रमण, भारतीय संस्कृति का चीरहरण..	गुजराती - हिन्दी
७. सत्यनारायण कथायां सत्यदर्शनम्	गुजराती – हिन्दी
८. यज्ञ परिचय एवं बलिदान आवश्यकता	गुजराती
९. बंदउ गुरूपद परम...........	हिन्दी
१०.मन्त्र शक्ति एवं उपासना रहस्य	हिन्दी
११.सत्यनारायण कथा-संशय-निवारण भाग-१	हिन्दी
१२.सत्यनारायण कथा-संशय-निवारण भाग-२	हिन्दी अप्रकाशित
१३.भारतीय संस्कृतिमां स्त्रीनुं स्थान	गुजराती
१४. वेद परिचय – लिंगमंत्रो	गुजराती